दृष्टि
The Vision

एडिटोरियल

(संग्रह)

दिसंबर भाग-2, 2020

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम **5**

- छठी अनुसूची के तहत संरक्षित क्षेत्र 5
- अनुच्छेद 356 और न्यायिक सक्रियतावाद 7

आर्थिक घटनाक्रम **9**

- पीएम कुसुम योजना 9
- एमएसपी फसलों के संभावित विकल्प 11
- भारत का सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम क्षेत्र 12

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम **15**

- विश्व व्यापार संगठन के समक्ष चुनौतियाँ 15
- सीमा पार जल प्रशासन 16
- भारत के लिये दो मोर्चों पर युद्ध की चुनौती 18
- हिंद-प्रशांत क्षेत्र में यूरोप की भूमिका 20

दृष्टि The Vision

नोट :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी **22**

➢ जैव ईंधन: संभावनाएँ और चुनौतियाँ 22

सामाजिक न्याय **24**

➢ अंतर-धार्मिक विवाह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता 24

➢ वैवाहिक बलात्कार और भारतीय न्याय प्रणाली 25

दृष्टि The Vision

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

छठी अनुसूची के तहत संरक्षित क्षेत्र

संदर्भ:

- भारतीय संविधान की छठी अनुसूची के तहत पूर्वोत्तर के चार राज्यों- असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम में 'स्वायत्त ज़िला परिषदों' (Autonomous District Councils- ADCs) की स्थापना की गई। ये स्वायत्त ज़िला परिषद आदिवासी संस्कृति की रक्षा और उसके संरक्षण की परिकल्पना करते हैं। ADCs की स्थापना के पीछे तर्क यह है कि 'भूमि के साथ संबंध आदिवासी या जनजातीय पहचान का आधार है।' भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय जनजातीय लोगों का नियंत्रण सुनिश्चित कर उनकी संस्कृति तथा पहचान को संरक्षित किया जा सकता है, क्योंकि ये कारक काफी हद तक जनजातीय लोगों की जीवन-शैली एवं संस्कृति को निर्धारित करते हैं।
- हालाँकि इस प्रकार की व्यवस्था के परिणामस्वरूप विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ है, उदाहरण के लिये आदिवासी और गैर-आदिवासी समुदायों के बीच संघर्ष। इसके अलावा यह राज्य और क्षेत्र के सामाजिक सद्भाव, स्थिरता तथा आर्थिक विकास को कमज़ोर करता है।

छठी अनुसूची में शामिल क्षेत्रों को विशेष दर्जा:

- छठी अनुसूची मूल रूप से अविभाजित असम के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों (90% से अधिक आदिवासी आबादी) के लिये लागू की गई थी। ऐसे क्षेत्रों को 'भारत सरकार अधिनियम, 1935' के तहत "बहिष्कृत क्षेत्रों" (Excluded Areas) के रूप में वर्गीकृत किया गया था
- ये क्षेत्र राज्यपाल के सीधे नियंत्रण में थे।
- संविधान की छठी अनुसूची असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम में जनजातीय आबादी के अधिकारों की रक्षा के लिये इन जनजातीय क्षेत्रों के स्वायत्त स्थानीय प्रशासन का अधिकार प्रदान करती है।
- यह विशेष प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 244 (2) और अनुच्छेद 275 (1) के तहत प्रदान किया गया है।
- छठी अनुसूची 'स्वायत्त ज़िला परिषदों' (ADCs) के माध्यम से इन क्षेत्रों के प्रशासन में स्वायत्तता प्रदान करती है।
- इन परिषदों को अपने अधिकार क्षेत्र के तहत आने वाले क्षेत्रों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार है, जिनमें भूमि, जंगल, खेती, विरासत, आदिवासियों के स्वदेशी रीति-रिवाज़ों और परंपराओं आदि से संबंधित कानून शामिल हैं, साथ ही इन्हें भूमि राजस्व तथा कुछ अन्य करों को इकट्ठा करने का भी अधिकार प्राप्त है।
- ADCs शासन की तीनों शाखाओं (विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका) के संबंध में विशिष्ट शक्तियाँ और ज़िम्मेदारियाँ रखते हुए एक लघु राज्य की तरह कार्य करते हैं।

छठी अनुसूची से जुड़ी समस्याएँ:

- **संवैधानिक सिद्धांतों का अवमूल्यन:** छठी अनुसूची गैर-आदिवासी निवासियों के खिलाफ विभिन्न तरीकों से भेदभाव करती है और उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन भी करती है। जैसे-कानून के समक्ष समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14), भेदभाव के खिलाफ अधिकार (अनुच्छेद 15), तथा भारत में कहीं भी बसने का अधिकार (अनुच्छेद 19)।
  - यह भेदभाव आदिवासियों और गैर-आदिवासियों के बीच लंबे समय से संघर्ष तथा दंगों की पुनरावृत्ति का कारण रहा है। इसके कारण कई गैर-आदिवासियों को पूर्वोत्तर राज्यों से बाहर निकालना पड़ा है।
    - गौरतलब है कि वर्ष 1972 (20%) के बाद से मेघालय में गैर-आदिवासी आबादी में तीव्र गिरावट (वर्ष 2011 की जनगणना में मात्र 14%) देखने को मिली है।
  - अभी भी इन क्षेत्रों में कई गैर-आदिवासी परिवार हिंसा के भय के वातावरण में जीवन जी रहे हैं। इन परिवारों की यह स्थिति संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत प्राप्त जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी के अधिकार का उपहास है।

नोट :

- **शक्ति के कई केंद्र:** संविधान के इस प्रावधान ने इन क्षेत्रों में स्वायत्तता की वास्तविक शुरुआत के बजाय शक्ति के कई केंद्रों की स्थापना को बढ़ावा दिया है।
  - शासन में समन्वय की कमी के कारण ज़िला परिषदों और राज्य विधानसभाओं के बीच लगातार हितों के टकराव की स्थिति बनी रहती है।
  - उदाहरण के लिये मेघालय के एक राज्य के रूप में गठन के बावजूद अभी भी पूरा राज्य (राजधानी शिलॉन्ग में कुछ हिस्से को छोड़कर) छठी अनुसूची के तहत आता है, जो राज्य सरकार के साथ लगातार संघर्ष का एक प्रमुख कारण।
- एक्ट ईस्ट नीति से टकराव: छठी अनुसूची के तहत इस क्षेत्र में लागू प्रतिबंध एक्ट ईस्ट नीति की सफलता के मार्ग में एक अवरोधक के रूप में कार्य करते हैं, जिसके लिये पूर्वोत्तर राज्यों के भीतर निर्बाध कनेक्टिविटी और विनिमय आवश्यक है।
  - इसी प्रकार 'इनर लाइन परमिट प्रणाली' (Inner Line Permit- ILP) निवेशकों और पर्यटकों को रोकते हुए इस क्षेत्र के आर्थिक विकास को बाधित करती है।

'इनर लाइन परमिट प्रणाली' (Inner Line Permit- ILP):

- इनर लाइन परमिट प्रणाली की अवधारणा ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान प्रस्तुत की गई थी।
- इनर लाइन परमिट एक दस्तावेज़ है और ILP प्रणाली के तहत संरक्षित क्षेत्र में जाने या रहने के लिये किसी भी भारतीय नागरिक (इस क्षेत्र से बाहर शेष भारत से संबंधित) को इसे प्राप्त करना अनिवार्य है।
- इनर लाइन परमिट की शुरुआत ब्रिटिश सरकार ने 'बंगाल ईस्टर्न फ्रंटियर रेगुलेशन एक्ट, 1873' [Bengal Eastern Frontier Regulation Act (BEFR), 1873] के तहत बंगाल के पूर्वी हिस्से की जनजातियों की सुरक्षा के लिये की थी।
- वर्ष 1873 के कानून के तहत ILP पूर्वोत्तर के केवल तीन राज्यों- मिज़ोरम, अरुणाचल प्रदेश और नगालैंड पर लागू था। परंतु वर्ष 2019 में मणिपुर चौथा ऐसा राज्य बना जहाँ ILP प्रणाली लागू होती है।
- विदेशी पर्यटकों को उन पर्यटन स्थलों की यात्रा करने के लिये एक संरक्षित क्षेत्र परमिट (पीएपी) की आवश्यकता होती है जो घरेलू पर्यटकों के लिये आवश्यक इनर लाइन परमिट से भिन्न होता है।
- 'विदेशी (संरक्षित क्षेत्रों) आदेश, 1958' के तहत 'इनर लाइन' में पड़ने वाले सभी क्षेत्रों (जैसा कि उक्त आदेश में परिभाषित किया गया है) को राज्य की अंतर्राष्ट्रीय सीमा के तहत संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है।

अन्य चुनौतियाँ:

- मेघालय राज्य की स्थापना के बाद से ही वहाँ 85% नौकरियों को आदिवासी लोगों के लिये आरक्षित कर दिया गया, साथ ही किसी भी गैर-आदिवासी व्यक्ति को भूमि का हस्तांतरण प्रतिबंधित कर दिया गया।
- इस प्रकार की कानूनी बाधाओं का प्रभाव राज्य में दशकों से रह रही गैर-आदिवासी आबादी के आर्थिक और सामाजिक विकास पर पड़ा है।

निष्कर्ष:

- जनजातीय समूह जैसे समाज के सीमांत वर्गों के लिये विशेष संवैधानिक सुरक्षा बहुत ही आवश्यक है ताकि उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय की भरपाई सुनिश्चित की जा सके और उनके साथ इस प्रकार के अन्याय के दोहराव को रोका जा सके। परंतु इसने उन गैर-आदिवासी परिवारों को न्याय पाने से वंचित किया है, जो स्वायत्त ज़िला परिषद प्रशासित क्षेत्रों में पीढ़ियों से रह रहे हैं और इस भेदभाव के परिणामस्वरूप बिल्कुल हाशिये पर पहुँच गए हैं।
- ऐसे में सरकार और अन्य एजेंसियों को इस संवेदनशील मुद्दे से निपटने के लिये इन क्षेत्रों में रह रहे आदिवासियों और गैर-आदिवासियों का विश्वास जीतना होगा तथा उनमें सुरक्षा एवं विश्वास की भावना जगाने के लिये सभी हितधारकों के साथ मिलकर कार्य करना होगा।

नोट :

अनुच्छेद 356 और न्यायिक सक्रियतावाद

संदर्भ:

- हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के उस आदेश पर रोक लगा दी गई है जिसमें उच्च न्यायालय ने आंध्र प्रदेश सरकार में संवैधानिक मशीनरी की विफलता (Consitutional Breakdown) के संदर्भ में स्वत: संज्ञान लेते हुए न्यायिक जाँच करने की बात कही थी। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के इस आदेश को स्पष्ट रूप से न्यायिक अतिरेक (Judicial Overreach) के मामले के रूप में देखा जा सकता है। "संवैधानिक टूट" या 'संवैधानिक मशीनरी की विफलता' के मुद्दों को संविधान के अनुच्छेद-356 के तहत निपटाया जाता है, हालाँकि अनुच्छेद-356 के आह्वान का विशेषाधिकार कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र का हिस्सा है, न कि न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र का।
- हालाँकि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश में न्यायपालिका और एक निर्वाचित सरकार के बीच चल रहे गतिरोध में हस्तक्षेप किया जाना सही है, परंतु आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का यह आदेश न्यायपालिका द्वारा अनुच्छेद-356 के उपयोग या इसके दुरुपयोग की संभावनाओं को बढ़ा देता है।
- इसे देखते हुए संविधान में आवश्यक परिवर्तन करने की आवश्यकता है, ताकि अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग को रोका जा सके और भारतीय संघवाद को इसकी पूर्ण भावना के साथ मज़बूत किया जा सके।

अनुच्छेद-356: पृष्ठभूमि

- डॉ. अंबेडकर द्वारा संविधान सभा में अनुच्छेद-356 को संविधान के एक मृत/अनाम पत्र (Dead Lettter) की संज्ञा देने और भविष्य में कभी इसका प्रयोग न किये जाने के अनुमान के विपरीत संविधान के लागू होने के बाद से अब तक 125 से अधिक मौकों पर इसका प्रयोग/दुरुपयोग किया जा चुका है।
- लगभग सभी मामलों में इसका प्रयोग राज्यों में संवैधानिक मशीनरी की विफलता के बजाय राजनीतिक हितों के लिये किया गया था।
- पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अनुच्छेद-356 का प्रयोग 27 बार किया और अधिकांश मामलों में इसका प्रयोग राजनीतिक स्थिरता, स्पष्ट जनादेश की अनुपस्थिति या समर्थन की वापसी आदि के आधार पर बहुमत वाली सरकारों को हटाने के लिये किया गया था।
- वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद उसने भी प्रतिशोध के रूप में 9 कॉन्ग्रेस शासित राज्यों की सरकारों को भंग कर दिया।
- वर्ष 1980 में इंदिरा गांधी की सत्ता में पुन: वापसी के बाद उन्होंने एक ही बार में विपक्षी दल द्वारा शासित नौ राज्यों की सरकारों को भंग कर दिया।
- इसके बाद भी चुनी गई सरकारों ने इस अनुच्छेद का दुरुपयोग इसी प्रकार जारी रखा।

अनुच्छेद-356 और सुरक्षा उपाय:

- वर्ष 1994 के एस. आर. बोम्मई मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये फैसले ने वर्षों से चली आ रही उस परंपरा को समाप्त कर दिया जिसके तहत यह मान लिया गया था कि अनुच्छेद-356 का उपयोग वास्तव में न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर था। गौरतलब है कि इस सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय में वर्ष 1977 के राजस्थान सरकार बनाम भारतीय गणराज्य मामले में स्थापित किया गया था।
  - एस.आर. बोम्मई मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले ने राज्य सरकारों को भंग करने की शर्तों और इसकी प्रक्रिया को भी निर्धारित किया।
- एस.आर. बोम्मई मामले में सर्वोच्च न्यायालय की नौ सदस्यीय पीठ ने कड़ी शर्तों के साथ अनुच्छेद-356, जो कि राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाने की अनुमति देता है, के दायरे को निर्धारित किया।
  - इसके तहत यह पता लगाना कि क्या राज्य में ऐसी वस्तुगत स्थितियाँ मौजूद हैं जो राज्य में शासन की प्रक्रिया को असंभव बनाती हैं और इस प्रक्रिया को न्यायिक समीक्षा के लिये भेजे जाने से पहले संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित करने की अनिवार्यता शामिल है।

आगे की राह:

- **न्यायपालिका का उत्तरदायित्व:** न्यायपालिका को स्वयं ही यह समझना चाहिये कि न्यायिक सक्रियता एक दुर्लभ अपवाद के रूप में अच्छी हो सकती है, परंतु एक अतिसक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में न्यायपालिका न तो देश के लिये अच्छी है और न ही न्यायपालिका के लिये।

नोट :

- **राज्यपाल की भूमिका:** एक लोकतांत्रिक सरकार के कामकाज को सुचारु रूप से चलाने और संघवाद की भावना को मज़बूत करने के लिये किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा अपने विवेक तथा व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करते समय न्यायसंगत, निष्पक्ष एवं कुशलता से कार्य किया जाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।
  - इस संदर्भ में सरकारिया आयोग और पुंछी आयोग की सिफारिशों का पूरी तरह से अनुसरण किया जाना चाहिये।
  - उदाहरण के लिये राज्यपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिये और राज्यपाल की नियुक्ति की शर्तों के साथ राज्यपाल के लिये एक निश्चित कार्यकाल का निर्धारण किया जाना चाहिये।
  - गौरतलब है कि वर्ष 1983 में गठित सरकारिया आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट किया था कि राज्यपाल का पद एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है, राज्यपाल न तो केंद्र सरकार के अधीनस्थ है और न ही उसका एजेंट है।
- **राष्ट्रपति की सक्रियता की आवश्यकता:** भारतीय संविधान के तहत राष्ट्रपति केंद्रीय मंत्रिमंडल की सहायता और सुझाव के प्रति बाध्य होता है, हालाँकि अनुच्छेद-356 के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग की स्थिति में राष्ट्रपति सस्पेंसिव वीटो का प्रयोग कर सकता है।
  - उदाहरण के लिये पूर्व राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने अक्तूबर 1977 में उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह की सरकार के खिलाफ मंत्रिमंडल के प्रस्ताव को दो बार यह कहते हुए लौटा दिया था कि राज्य में इस प्रकार राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना संवैधानिक रूप से असंगत होगा।

निष्कर्ष:

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के आदेश को स्थगित किया जाना यह सुनिश्चित करेगा कि राज्य की शक्तियों के पृथक्करण की व्यवस्था को प्रभावित करने वाले कानूनी हस्तक्षेप के प्रयासों को सीमित किया जाए। हालाँकि अनुच्छेद-356 के बार-बार होने वाले दुरुपयोग को रोकने के लिये व्यापक संवैधानिक संशोधन के साथ मज़बूत राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता होगी।

नोट :

आर्थिक घटनाक्रम

पीएम कुसुम योजना

- वर्ष 2018 के बजट में 28,250 मेगावाट तक के विकेंद्रीकृत सौर ऊर्जा उत्पादन से संबंधित किसान-उन्मुख योजना' प्रधानमंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान (पीएम कुसुम) योजना' को प्रोत्साहन प्रदान किया गया है। पीएम कुसुम योजना किसानों को अपनी बंजर भूमि पर स्थापित सौर ऊर्जा परियोजनाओं के माध्यम से ग्रिड को बिजली बेचने का विकल्प प्रदान करते हुए अतिरिक्त आय अर्जित करने का अवसर प्रदान करेगी।
- यदि पीएम कुसुम योजना को प्रभावी रूप से लागू किया जाता है तो यह भारत में ऊर्जा सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिये सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित करने की दिशा में एक मज़बूत आधार के रूप में कार्य कर सकती है।

पीएम कुसुम योजना के घटक:

- पीएम कुसुम योजना के तीन घटक हैं और इन घटकों के तहत वर्ष 2022 तक 30.8 गीगावाट की अतिरिक्त सौर क्षमता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है।
  - **घटक A:** भूमि पर स्थापित 10,000 मेगावाट के विकेंद्रीकृत ग्रिडों को नवीकरणीय ऊर्जा संयंत्रों से जोड़ना।
  - **घटक B:** 20 लाख सौर ऊर्जा चालित कृषि पंपों की स्थापना।
  - **घटक C:** ग्रिड से जुड़े 15 लाख सौर ऊर्जा चालित कृषि पंपों का सौरीकरण (Solarisation)।
- इस योजना के तहत केंद्र सरकार द्वारा कुल 34,000 करोड़ रुपए की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाएगी।

योजना के अपेक्षित लाभ:

- **डिस्कॉम की सहायता:** वर्तमान में कृषि क्षेत्र के लिये बिजली पर अत्यधिक सब्सिडी दी जाती है, इसके लिये अधिकांशत: भूजल स्तर की तीव्र गिरावट और डिस्कॉम की खराब वित्तीय स्थिति को प्रमुख कारण माना जाता है।
  - इस योजना के तहत सौर ऊर्जा चालित पंपों की स्थापना से सिंचाई के लिये ग्रिडों से होने वाली विद्युत आपूर्ति पर किसानों की निर्भरता कम होगी। इस प्रकार यह योजना कृषि क्षेत्र में सब्सिडी के बोझ को कम करते हुए डिस्कॉम की वित्तीय स्थिति को सुधारने में सहायक होगी।
- **राज्यों की सहायता:** इस योजना के तहत विकेंद्रीकृत सौर ऊर्जा उत्पादन को बढ़ावा दिया जाएगा, जिससे आपूर्ति के दौरान होने वाली विद्युत क्षति या ट्रांसमिशन हानि (Transmission Loss) को कम किया जा सकेगा।
  - राज्य सरकारों के लिये यह योजना सिंचाई पर सब्सिडी के रूप में होने वाले परिव्यय को कम करने का एक संभावित विकल्प हो सकती है।
  - इसके अलावा यह योजना राज्यों को अपने 'अक्षय खरीद दायित्वों' (RPO) के लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक होगी।
- **किसानों की सहायता:** यदि किसान अपने सौर ऊर्जा संयंत्रों से उत्पादित अधिशेष विद्युत को बेचने में सक्षम होते हैं, तो इससे उन्हें बिजली बचाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकेगा और भूजल का उचित एवं कुशल उपयोग सुनिश्चित किया जा सकेगा।
  - यह योजना किसानों को सौर जल पंपों (ऑफ-ग्रिड और ग्रिड-कनेक्टेड दोनों) के माध्यम से जल सुरक्षा प्रदान करने में सहायक हो सकती है।
- **पर्यावरण के संदर्भ में:** इस योजना के तहत कृषि क्षेत्र में सिंचाई के लिये सौर चालित पंपों की स्थापना के माध्यम से सिंचित क्षेत्र में वृद्धि के साथ ही प्रदूषण में वृद्धि करने वाले डीज़ल पंपों के प्रयोग में कमी लाने में सफलता प्राप्त होगी।
  - साथ ही यह योजना छतों और बड़े संयंत्रों के बीच मध्यवर्ती स्तर सौर ऊर्जा उत्पादन के रिक्त स्थान को भरने में सहायक होगी।

नोट :

चुनौतियाँ:

- **संसाधन और उपकरणों की उपलब्धता:** इस योजना को व्यापक स्तर पर लागू किये जाने के मार्ग में एक बड़ी बाधा उपकरणों की स्थानीय अनुपलब्धता है। वर्तमान में स्थानीय आपूर्तिकर्त्ताओं के लिये पारंपरिक विद्युत या डीज़ल पंप की तुलना में सोलर पंप की उपलब्धता एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।
    - इसके अलावा 'घरेलू सामग्री आवश्यकता' (Domestic Content Requirements- DCR) संबंधी नियमों की सख्ती के कारण सौर ऊर्जा उपकरणों के आपूर्तिकर्त्ताओं को स्थानीय सोलर सेल (Solar Cell) निर्माताओं पर निर्भर रहना पड़ता है, हालाँकि वर्तमान में देश में स्थानीय स्तर पर पर्याप्त घरेलू सोलर सेल निर्माण क्षमता नहीं विकसित की जा सकी है।
- **छोटे और सीमांत किसानों की अनदेखी:** इस योजना में छोटे और सीमांत किसानों की अनदेखी किये जाने का आरोप भी लगता रहा है, क्योंकि यह योजना 3 हॉर्स पावर (HP) और उससे उच्च क्षमता वाले पंपों पर केंद्रित है।
    - इस योजना के तहत किसानों की एक बड़ी आबादी तक सौर पंपों की पहुँच सुनिश्चित नहीं की जा सकी है क्योंकि वर्तमान में देश के लगभग 85% किसान छोटे और सीमांत श्रेणी में आते हैं।
    - विशेषकर उत्तर भारत और दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में भू-जल स्तर में हो रही गिरावट किसानों के लिये छोटे पंपों की उपयोगिता को सीमित करती है।
- **भू-जल स्तर में गिरावट:**
    - केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के अनुसार, वर्तमान में देश में लगभग 30 मिलियन कृषि पंप संचालित हैं जिनमें से लगभग 22 मिलियन विद्युत चालित, जबकि 8 मिलियन डीज़ल पंप चालित हैं।
    - गौरतलब है कि वर्तमान में देश के कृषि क्षेत्र में वार्षिक विद्युत खपत लगभग 200 बिलियन यूनिट है, जो कि देश की कुल विद्युत खपत का लगभग 18% है।
    - कृषि क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति को लेकर सरकार द्वारा भारी सब्सिडी दिये जाने के कारण सिंचाई के लिये खर्च की जाने वाली विद्युत की लागत बहुत ही कम होती है, जिसके कारण कई किसान अनावश्यक रूप से जल का दोहन करते रहते हैं। कृषि क्षेत्र में भू-जल का यह अनियंत्रित दोहन जल स्तर में गिरावट का एक प्रमुख कारण है।
    - सिंचाई के लिये सौर ऊर्जा प्रणाली की स्थापना करने के बाद भू-जल स्तर में गिरावट की स्थिति में उच्च क्षमता के पंपों को लगाना और भी कठिन तथा खर्चीला कार्य होगा, क्योंकि इसके लिये किसानों को पंप से साथ-साथ बढ़ी हुई क्षमता के लिये सोलर पैनलों की संख्या में वृद्धि करनी होगी।
- **क्रियान्वयन में देरी:** गौरतलब है तत्कालीन केंद्रीय कृषि राज्य मंत्री द्वारा वित्तीय वर्ष 2018-19 के बजट की घोषणा के 20 दिनों के अंदर ही मार्च 2018 में इस योजना को केंद्रीय मंत्रिमंडल की मंज़ूरी मिलने की बात कही गई थी जबकि इस योजना के लिये केंद्रीय मंत्रिमंडल की मंज़ूरी फरवरी 2019 में प्राप्त हुई।
    - हालाँकि वित्तीय वर्ष 2020-21 में केंद्रीय वित्त मंत्री द्वारा इसके तहत 20 लाख किसानों को सोलर पंप स्थापित करने और अन्य 15 लाख किसानों को अपने विद्युत चालित पंप के सौरीकरण में सहयोग देने की बात कहते हुए इस योजना के दायरे को बढ़ाने की घोषणा की गई।

आगे की राह:

- **राज्यों को एक साथ लाना:** इस विकेंद्रीकृत सौर ऊर्जा योजना की सफलता के लिये केंद्र और राज्यों के बीच आम सहमति का होना बहुत ही आवश्यक है।
    - भारत में ऊर्जा क्षेत्र से जुड़ा कोई भी सुधार तब तक प्रभावी रूप से लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि केंद्र, राज्य और अन्य सभी हितधारकों के बीच इस संदर्भ में आम सहमति न बन जाए।
- **संधारणीय कृषि (Sustainable Agriculture):** सिंचाई के लिये पारंपरिक डीज़ल या विद्युत चालित पंपों से सौर पंपों की तरफ बढ़ने के साथ ही किसानों को 'ड्रिप इर्रिगेशन' (Drip irrigation) जैसे आधुनिक उपायों को भी अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये, जो फसल उत्पादन में वृद्धि के साथ ही पानी और बिजली की बचत भी करती है।

- **आकर्षक सौर ऊर्जा मूल्य निर्धारण:** इस योजना के प्रभावी कार्यान्वयन और हितधारकों की इस पहल में गंभीरता के साथ भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये कार्यान्वयन की उच्च लागत और व्यापक रखरखाव की चुनौतियों को देखते हुए योजना की बेंचमार्क कीमतों को अधिक आकर्षक बनाना होगा।

निष्कर्ष:

सरकार की अन्य कई योजनाओं की तरह ही पीएम कुसुम योजना भी जनहित और एक आत्मनिर्भर भारत के भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। परंतु भारत में सोलर सेल के निर्माण को बढ़ावा देने या विद्युत सब्सिडी को चरणबद्ध रूप से हटाए जाने से जुड़े नीतिगत हस्तक्षेप इस योजना के लिये अपने लक्ष्य की प्राप्ति में एक उत्प्रेरक का कार्य कर सकते हैं।

एमएसपी फसलों के संभावित विकल्प

भारत में हरित क्रांति (Green Revolution) ने प्रौद्योगिकी और नीतियों का महत्त्वपूर्ण पैकेज प्रदान किया, जिससे खाद्यान्न उत्पादन (मुख्यत: गेहूँ और चावल) बढ़ाने की दिशा में त्वरित परिणाम देखने को मिले। इसने भारत को प्रधान खाद्यान्नों की भारी कमी का सामना करने वाले देश से आत्मनिर्भर बनने में सक्षम बनाया। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश देश में हरित क्रांति की तकनीकी को सबसे पहले अपनाने वाले राज्य थे। साथ ही ये क्षेत्र देश में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी के प्रसार हेतु अपनाई गई विभिन्न नीतियों के प्रमुख लाभार्थी भी थे। इन दोनों फसलों की प्रगति और विशेषज्ञता ने खाद्य सुरक्षा की स्थिति हासिल करने के देश के राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि वर्ष 1980 के दशक के मध्य में सामान्य रूप से चावल-गेहूँ की फसल प्रणाली और धान की खेती से संबंधित कुछ प्रतिकूल रुझानों के साथ हरित क्रांति की कुछ गंभीर समस्याएँ देखने को मिलीं।

अत: कृषि संकट से निपटने के लिये इन कोर हरित क्रांति राज्यों को उच्च मूल्य वाली फसलों की तरफ बढ़ने के साथ गैर-कृषि गतिविधियों को भी बढ़ावा देना चाहिये।

गेहूँ और चावल उत्पादन को बढ़ावा देने वाले कारक:

- **उत्पादन हेतु राज्य की गारंटी:** 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' (MSP) पर धान (चावल) और गेहूँ के विपणन अधिशेष की खरीद ने किसानों को कीमत या बाज़ार जोखिम के खिलाफ पूरी तरह से सुरक्षित रखा है।
- इसी दौरान MSP ने इन दो फसलों से आय का एक यथोचित स्थिर प्रवाह भी सुनिश्चित किया।

तकनीकी उन्नति: समय के साथ अन्य प्रतिस्पर्द्धी फसलों की तुलना में चावल और गेहूँ के तकनीकी लाभ में वृद्धि हुई, क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा कृषि अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में इन दो फसलों पर अपने सर्वोत्तम संसाधनों और वैज्ञानिक जनशक्ति लगा दी गई।

इनपुट सब्सिडी की भूमिका: जल और भूमि में सार्वजनिक तथा निजी निवेश के साथ इनपुट सब्सिडी इन फसलों के उत्पादन में हुई व्यापक वृद्धि के अन्य अनुकूल कारक थे।

- इस प्रकार खरीफ में धान और रबी में गेहूँ अन्य प्रमुख फसलों (अनाज, दलहन, तिलहन) की तुलना में उत्पादकता, आय, मूल्य तथा उपज के जोखिम के मामले में सबसे बेहतर फसल के रूप में सामने आए।

पहली हरित क्रांति का प्रभाव और अन्य संबंधित मुद्दे:

- बड़ी संख्या में रिपोर्ट और नीति दस्तावेज़ों ने प्राकृतिक संसाधनों, पारिस्थितिकी, पर्यावरण और राजकोषीय संसाधनों पर हरित क्रांति की फसलों (विशेष रूप से धान की खेती) के प्रतिकूल प्रभाव को रेखांकित किया है।
    - **पर्यावरणीय प्रभाव:** धान की खेती और सिंचाई के लिये भूजल के अनियंत्रित दोहन हेतु मुफ्त बिजली देने की नीति का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव भू-जल की तीव्र गिरावट के रूप में देखने को मिला है।
    - पिछले एक दशक में पंजाब में और हरियाणा के जल स्तर में क्रमश: 84% तथा 75% की गिरावट देखी गई है।
    - विशेषज्ञों द्वारा ऐसी आशंका व्यक्त की गई है कि यदि भू-जल दोहन के वर्तमान स्तर कम नहीं किया जाता है तो अगले कुछ ही वर्षों में पंजाब और हरियाणा में भू-जल के समाप्त होने का खतरा उत्पन्न हो सकता है।
    - इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में धान के डंठल तथा पुआल को जलाए जाने से पूरे क्षेत्र में एक और गंभीर पर्यावरणीय एवं स्वास्थ्य खतरा उत्पन्न हो गया है।

नोट :

- **आय और उत्पादकता में स्थिरता:** चावल-गेहूँ की खेती में एक समय के पश्चात् उत्पादकता और आय में बिना किसी विशेष वृद्धि के इसके स्थिर बने रहने के संदर्भ में भी गंभीर चिंताएँ बनी हुई हैं।
  - चावल और गेहूँ की उत्पादकता के ऐसे ही एक स्थिरता तक पहुँचने के कारण आय में वृद्धि के लिये MSP को बढ़ाए जाने का दबाव तेज़ हुआ है। हालाँकि मांग और आपूर्ति की वर्तमान स्थिति MSP में वृद्धि का समर्थन नहीं करती।
- **राजकोषीय चुनौती:** हाल के वर्षों में भारत में प्रति व्यक्ति चावल और गेहूँ की खपत में गिरावट के साथ उपभोक्ताओं द्वारा अन्य खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता देने के मामलों में वृद्धि देखी गई है। हालाँकि वर्ष 2006-07 के बाद से देश में चावल और गेहूँ की खरीद दोगुने से अधिक हो गई है।
  - इस मांग-आपूर्ति बेमेल के कारण देश को ऐसे बड़े खाद्यान्न भंडार की खपत का कोई आसान तरीका नहीं मिल रहा है जिसके कारण इसका रखरखाव और नई फसलों की खरीद सरकार के राजकोषीय संसाधनों पर तनाव पैदा कर रही है।
- **किसानों का उद्यमिता कौशल:** पिछले लगभग 50 वर्षों से अधिक समय से बाज़ार में आने वाले चावल और गेहूँ की लगभग पूरी उपज की MSP पर खरीद ने एक प्रतिस्पर्द्धी बाज़ार (जहाँ कीमतों का निर्धारण मांग और आपूर्ति तथा प्रतिस्पर्द्धा जैसे कारकों के आधार पर किया जाता है) में अपने उत्पादों को बेचने के किसानों के उद्यमशीलता कौशल को प्रभावित किया है।

आगे की राह:

- **विविधता और वैकल्पिक चुनाव:** इतने बड़े पैमाने पर कुछ ही फसलों की खेती और MSP वृद्धि से जुड़ी चुनौतियों का परिणाम यह होगा कि किसानों के लिये चावल-गेहूँ की खेती से अपनी आय में वृद्धि करना कठिन हो जाएगा और ऐसे में उन्हें अपनी आय को बनाए रखने हेतु क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुरूप फसलों के चुनाव हेतु व्यापक विकल्प प्रदान करने होंगे।
  - हरित क्रांति बेल्ट के किसानों को उच्च-भुगतान वाली बागवानी फसलों की ओर बढ़ने हेतु सक्षम बनाने के लिये अनुबंध खेती जैसे मूल्य आश्वासन से जुड़े संस्थागत व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है।
  - परंपरागत हरित क्रांति वाले राज्यों में कृषि के समक्ष पारिस्थितिक, पर्यावरणीय और आर्थिक चुनौतियों का समाधान MSP को वैध बनाना नहीं है, बल्कि MSP फसलों से उच्च मूल्य वाली फसलों की ओर बढ़ना और गैर-कृषि गतिविधियों को बढ़ावा देना है।
- **कृषि से जुड़े व्यवसायों और उद्योगों को बढ़ावा:** हरित क्रांति बेल्ट राज्यों द्वारा अपनी स्थानीय विशिष्टताओं और ज़रूरतों के अनुरूप कृषि आधारित आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिये संभावित विकल्पों में से कुछ निम्नलिखित हैं:
  - औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा देना।
  - कटाई के बाद मूल्य संवर्द्धन और आधुनिक मूल्य श्रृंखलाओं पर विशेष ज़ोर देना।
  - उच्च तकनीक युक्त कृषि को बढ़ावा देना, कृषि और कृषि-इनपुट उद्योगों के एक व्यापक नेटवर्क की स्थापना।
  - बिचौलियों के हस्तक्षेप के बगैर 'खपत और उपभोक्ताओं' तथा 'उत्पादन एवं उत्पादकों' के बीच सीधा संपर्क स्थापित करने की व्यवस्था करना।

निष्कर्ष: हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान संकट से बाहर निकलने और खाद्य सुरक्षा के मामले में एक आत्मनिर्भर देश बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि खाद्य असुरक्षा से निपटने के इन प्रयासों के दौरान देश के एक बड़े हिस्से में कुछ सीमित फसलों जैसे- गेहूँ और चावल पर किसानों की निर्भरता बढ़ी है। साथ ही इनके उत्पादन में वृद्धि हेतु अपनाए जाने वाले गैर-प्राकृतिक हस्तक्षेपों की अधिकता के कारण कई अन्य चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। परंपरागत हरित क्रांति बेल्ट के राज्यों को खेती और ग्रामीण युवाओं के भविष्य को सुरक्षित तथा बेहतर बनाने के लिये कुछ ही फसलों तक सीमित रहने की बजाय प्रकृति और बाज़ार से जुड़े पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कृषि एवं गैर-कृषि क्षेत्र में एक अभिनव विकास रणनीति को अपनाना बहुत आवश्यक होगा।

भारत का सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम क्षेत्र

संदर्भ:

- सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) ने हमेशा से ही भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में देश में सक्रिय लगभग 6.3 करोड़ MSMEs न सिर्फ देश की जीडीपी में एक बड़ा योगदान देते हैं बल्कि ये एक बड़ी आबादी के लिये रोज़गार

के अवसर उपलब्ध कराते हैं। गौरतलब है कि यह क्षेत्र लगभग 110 मिलियन रोज़गार उपलब्ध कराने के साथ श्रमिक बाज़ार की स्थिरता में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे में सरकार द्वारा वर्तमान में आत्मनिर्भर भारत अभियान पर विशेष ज़ोर दिये जाने के साथ ही भारत की अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक रणनीति की दृष्टि से MSMEs की भूमिका और अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है।

- MSME क्षेत्र के महत्त्व को देखते हुए वर्ष 2019 में भारत सरकार द्वारा अनुमान लगाया गया कि अगले पाँच वर्षों में यह क्षेत्र भारत की आधी जीडीपी और लगभग 50 मिलियन नए रोजगारों के सृजन के लिये उत्तरदायी होगा।
- हालाँकि COVID-19 महामारी के कारण मांग पक्ष की तरफ और 'वस्तु एवं सेवा कर' (GST) जैसे संरचनात्मक सुधारों के कारण आपूर्ति पक्ष में मंदी के संकेत देखने को मिले थे, इसके साथ ही विमुद्रीकरण के कारण भी MSME क्षेत्र पर व्यापक नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

MSME क्षेत्र की प्रमुख चुनौतियाँ:

गौरतलब है कि जर्मनी और चीन की जीडीपी में MSMEs की भागीदारी क्रमश: 55% और 60% है जो इस बात का संकेत है कि भारत को इस क्षेत्र में अभी एक लंबी यात्रा तय करनी है, MSME की प्रगति के मार्ग की प्रमुख बाधाओं में से कुछ निम्नलिखित हैं:

- **वित्तीय चुनौतियाँ:** भारत में MSME क्षेत्र में ऋण आपूर्ति की कमी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।
  - इस क्षेत्र में उपलब्ध औपचारिक ऋण 16 ट्रिलियन रुपए ही है, जिसके कारण इस क्षेत्र में कुल व्यावहारिक ऋण की ज़रूरत (36 ट्रिलियन रुपए) के सापेक्ष अभी भी लगभग 20 ट्रिलियन रुपए का अंतर बना हुआ है।
  - इसके साथ ही बैंकिंग पहुँच की कमी के कारण भारत में MSMEs को अधिकांशत: 'गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों' (NBFCs) या सूक्ष्म वित्तीय संस्थानों (MFIs) पर निर्भर रहना पड़ता है।
  - सितंबर 2018 से NBFC क्षेत्र में तरलता की कमी ने MSMEs की वित्तीय चुनौती को और अधिक बढ़ा दिया है।
- **MSMEs के औपचारीकरण की कमी:** इस क्षेत्र में क्रेडिट गैप का एक प्रमुख कारण MSMEs के बीच औपचारिकता की कमी रही है।
  - देश में सक्रिय कुल MSMEs में से लगभग 86% का पंजीकरण नहीं किया गया है।
  - वर्तमान में भी देश के कुल 6.3 करोड़ MSMEs में से केवल 1.1 करोड़ ही 'वस्तु और सेवा कर' (GST) व्यवस्था के साथ पंजीकृत हैं।
  - इसके साथ ही इन 1.1 करोड़ MSMEs में से आयकर दाखिल करने वालों की संख्या और भी कम है।
  - ऐसे में सीमित उपलब्धता और डेटा पारदर्शिता के अभाव में भारतीय MSME क्षेत्र की ऋण ज़रूरत को पूरा नहीं किया जा सका है।
- **तकनीकी बाधाएँ:**
  - भारत का MSME क्षेत्र बड़े पैमाने पर पुरानी और अप्रचलित प्रौद्योगिकी पर आधारित है, जो इसकी उत्पादन क्षमता को बाधित करता है।
  - कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा एनालिटिक्स, रोबोटिक्स और अन्य संबंधित प्रौद्योगिकियों (जिसे सामूहिक रूप से औद्योगिक क्रांति 4.0 के रूप में जाना जाता है) का उद्भव संगठित क्षेत्र के उद्यमों की तुलना में MSME के लिये ज़्यादा बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है।
- **नियामकीय बाधाएँ:** MSMEs के संचालन के लिये बहुत सी सरकारी अनुमतियों और सेवाओं की आवश्यकता होती है, जिसके लिये उद्यमियों को विभिन्न सरकारी विभागों के चक्कर लगाने पड़ते हैं।
  - नियामकीय जटिलताओं के कारण वर्तमान में भी निर्माण परमिट प्राप्त करना, अनुबंधों को लागू करना, करों का भुगतान, व्यापार शुरू करना और सीमाओं के पार व्यापार करना आदि MSMEs की प्रगति में एक बड़ी बाधा बनी हुई है।
  - विनियामक जोखिम और नीतिगत अनिश्चितता ने पूर्व में भी निवेशकों के आत्मविश्वास को प्रभावित किया है।
- **उत्पादन की चुनौतियाँ:** वर्तमान में देश में सक्रिय MSMEs में अधिकांश फर्म सूक्ष्म उद्यम (Micro Enterprises) श्रेणी की हैं।
  - देश का MSME क्षेत्र मुख्य रूप से छोटी और स्थानीय दुकानों की भरमार से बना एक सूक्ष्म उद्यम क्षेत्र है, ऐसे में उनके व्यापार या उत्पादन को बढ़ाना (विशेषकर वर्तमान वित्तीय चुनौती के बीच) एक बड़ी चुनौती है।

इन समस्याओं के कारण भारत के विनिर्माण क्षेत्र में बड़ी कंपनियों की तुलना में छोटी कंपनियों का उत्पादन बहुत ही कम रहा है।

आगे की राह:

- **बॉण्ड मार्केट का विकास करना:** हाल के वर्षों में भारतीय बॉण्ड बाज़ार में हुई प्रगति के बीच एसएमई बॉण्ड (SME Bond) को बढ़ावा देने से एमएसएमई की ऋण पूंजी बाज़ारों की भागीदारी को बढ़ावा मिल सकता है।
    - एक तरफ जहाँ SME बॉण्ड को प्रोत्साहित करने से MSMEs को अन्य वित्तीय बिचौलियों की तुलना में कम ब्याज दर का लाभ मिल सकेगा वहीं ये बॉण्ड बाज़ार में काम करने वाले जागरूक और शिक्षित निवेशकों के लिये एक व्यवहार्य उच्च रिटर्न के साधन के रूप में कार्य करेंगे।
- **स्वतंत्र नियामकीय व्यवस्था:** डेटा अर्थव्यवस्था के बढ़ते महत्त्व को देखते हुए यह बहुत ही आवश्यक हो गया है कि सरकार द्वारा एक स्वतंत्र निकाय की स्थापना की जाए जो MSMEs को परामर्श देने के साथ उन्हें इस नई डिजिटल व्यवस्था में आगे बढ़ने में सक्षम बना सके।
- **श्रम कानूनों में सुधार:** वर्तमान में देश में लागू श्रम कानून MSMEs के विकास के लिये बहुत अनुकूल नहीं हैं।
    - श्रमिक कानूनों में बदलाव किया जाना बहुत ही आवश्यक है, परंतु इसकी संवेदनशीलता को देखते हुए इन कानूनों को MSMEs के लिये विकास-उन्मुख ढाँचा प्रदान करने और श्रमिकों के अधिकारों के संदर्भ में पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने के बीच सही संतुलन स्थापित करना होगा।
- **विनियमन में सुधार:** हाल के वर्षों में सरकार द्वारा व्यापार सुगमता पर विशेष ज़ोर दिया गया है परंतु इसी दौरान छोटे व्यवसायों के लिये रिपोर्टिंग, अनुमोदन और अनुपालन आवश्यकता आदि जटिलताएँ बनी हुई हैं।
    - यदि हम सही मायने में चाहते हैं कि MSMEs का देश के आर्थिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप हो, तो इसके लिये MSMEs को वर्तमान जटिलताओं से मुक्त एक ऐसा नियामकीय ढाँचा प्रदान किया जाना बहुत ही आवश्यक है कि जो उनके खिलाफ काम करने के बजाय उनके लिये काम करता हो।

निष्कर्ष:

MSMEs एक लचीली राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिये रीढ़ का कार्य करते हैं। देश के मज़बूत आर्थिक भविष्य के लिये MSMEs के विकास को प्राथमिकता देना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सरकार द्वारा पिछले कुछ वर्षों में इस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। भारत को ऐसे ही और उपायों (विशेषकर वर्तमान परिस्थिति में) को अपनाने की आवश्यकता है। अगला दशक भारत को एक उभरती हुई शक्ति से आगे बढ़ते हुए एक स्थापित आर्थिक महाशक्ति के रूप में बदलने का दशक होगा और इस यात्रा में MSMEs की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होगी।

नोट :

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

विश्व व्यापार संगठन के समक्ष चुनौतियाँ

संदर्भ:

- वर्ष 1995 में अपनी स्थापना के बाद से ही 'विश्व व्यापार संगठन' (World Trade Organisation- WTO) बहुपक्षीय नियमों पर आधारित वैश्विक व्यापार प्रणाली की आधारशिला रहा है। हालाँकि COVID-19 महामारी से पहले ही WTO अपने तीनों प्रमुख कार्यों- 'व्यापार को उदार बनाने और नए नियमों को स्थापित करने के लिये वार्ता हेतु मंच प्रदान करना, व्यापार नीतियों की निगरानी तथा इसके 164 सदस्यों के बीच के विवादों को हल करना' आदि में कई प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं।
- इसके अलावा व्यापार तनावों के राजनीतिकरण और COVID-19 महामारी के कारण उत्पन्न बड़ी आर्थिक चुनौतियों के बीच एक आधुनिक तथा उद्देश्यों को बेहतर तरीके से प्राप्त करने की क्षमता वाले WTO की भूमिका पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गई है।

WTO की चुनौतियाँ:

- **चीन का राजकीय पूंजीवाद:** चीन की आर्थिक प्रणाली की प्रकृति, उसकी अर्थव्यवस्था के आकार और हाल के वर्षों में इसकी वृद्धि ने वैश्विक व्यापार प्रणाली में तनाव पैदा किया है।
- चीन के राज्य स्वामित्व वाले उद्यम मुक्त बाज़ार की वैश्विक व्यापार प्रणाली के लिये एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करते हैं।
- हालाँकि समस्या का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा यह है कि चीन द्वारा बौद्धिक संपदा, राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों और औद्योगिक सब्सिडी के संबंध प्रस्तुत चुनौतियों से निपटने के लिये WTO के वर्तमान नियम पर्याप्त नहीं हैं।
- अमेरिका और चीन के हालिया व्यापार युद्ध का कारण भी यही मुद्दा रहा है।

संस्थागत मुद्दे:

- अमेरिका द्वारा WTO के अपीलीय निकाय में नियुक्तियों पर रोक लगा दिये जाने के कारण अपीलों की सुनवाई हेतु अधिनिर्णायकों के आवश्यक कोरम को पूरा नहीं किया जा सका है, जिसके चलते दिसंबर 2019 से ही WTO के अपीलीय निकाय के संचालन को प्रभावी रूप से निलंबित कर दिया गया है।
- विश्व व्यापार संगठन के विवाद निपटान प्रणाली का संकट इसकी बातचीत की प्रक्रिया के बाधित होने से जुड़ा हुआ है।

पारदर्शिता का अभाव:

- विश्व व्यापार संगठन की वार्ताओं में एक समस्या यह है कि WTO के मापदंडों के अनुरूप विकसित या विकासशील देश की परिभाषा पर कोई सहमति नहीं है।
- वर्तमान में सदस्य देश 'विशेष और अलग सुविधाएँ/सेवाएँ' प्राप्त करने के लिये अपने आप को एक विकासशील देश के रूप में नामित कर सकते हैं, यह प्रणाली एक बड़े विवाद का विषय रही है।

ई-कॉमर्स और डिजिटल व्यापार:

- पिछले 25 वर्षों के दौरान वैश्विक व्यापार परिदृश्य में व्यापक बदलाव देखने को मिला है, परंतु इस दौरान WTO के नियम इन बदलावों के साथ गति बनाए रखने में असफल रहे हैं।
- वर्ष 1998 में वैश्विक अर्थव्यवस्था में ई-कॉमर्स की बढ़ती भूमिका को देखते हुए विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों ने वैश्विक ई-कॉमर्स से संबंधित सभी मुद्दों की जाँच के लिये एक WTO ई-कॉमर्स अधिस्थगन (सीमा शुल्क के संदर्भ में) को लागू किया था।
- हालाँकि इस अधिस्थगन के राजस्व पर पड़ने वाले प्रभावों के कारण विकासशील देशों द्वारा हाल में इस अधिस्थगन पर प्रश्न उठाए गए हैं।
- इसके अतिरिक्त COVID-19 महामारी ने व्यवसायों के ई-कॉमर्स की तरफ स्थानांतरण को और अधिक गति प्रदान की है, अत: वर्तमान में ऑनलाइन व्यापार को विनियमित करने वाले नियमों की भूमिका कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। परंतु वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार के विपरीत कुछ ही अंतर्राष्ट्रीय नियम सीमापार ई-कॉमर्स को नियंत्रित करते हैं।

नोट :

कृषि और विकास:

- वर्ष 1995 में कृषि से जुड़ा WTO समझौता लागू हुआ जो इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।
- कृषि पर हुआ यह समझौता, सब्सिडी में सुधार और उच्च व्यापार बाधाओं को लक्षित करता है, जो कि कृषि व्यापार को विकृत करते हैं।
- हालाँकि भारत और ऐसे ही अन्य विकासशील देशों की खाद्य सुरक्षा तथा विकास से जुड़ी आवश्यकताओं के कारण कृषि समझौते को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

आगे की राह:

- **नए नियमों का निर्धारण:** विश्व व्यापार संगठन के आधुनिकीकरण हेतु डिजिटल व्यापार और ई-कॉमर्स से निपटने के लिये नए तथा प्रभावी नियमों के विकास की आवश्यकता होगी।
    - WTO के सदस्यों को चीन की व्यापार नीतियों और प्रथाओं के साथ अधिक प्रभावी ढंग से निपटना होगा, जिसमें राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों तथा औद्योगिक सब्सिडी के मुद्दे को बेहतर तरीके से संभालना भी शामिल है।
- **पर्यावरणीय स्थिरता:** जलवायु परिवर्तन के मुद्दे के संदर्भ में तीव्र प्रतिक्रिया की आवश्यकता को देखते हुए व्यापार और पर्यावरणीय स्थिरता को संरेखित करने के प्रयासों में वृद्धि द्वारा जलवायु परिवर्तन से निपटने तथा विश्व व्यापार संगठन को मज़बूत करने में सहायता प्राप्त हो सकती है।
    - संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों (SDG) और जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते के उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रयासों में व्यापार तथा WTO की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।
    - इसके अलावा WTO जीवाश्म ईंधन सब्सिडी में सुधार करने में भूमिका निभा सकता है।
    - उदाहरण के लिये 2017 में 'ब्यूनस आयर्स मंत्रिस्तरीय सम्मेलन' में न्यूज़ीलैंड की अगुवाई में 12 WTO सदस्यों के एक गठबंधन ने WTO द्वारा अप्रभावी जीवाश्म ईंधन सब्सिडी, जो अनावश्यक खपत को प्रोत्साहित करती है, पर नियंत्रण की मांग की थी।

COVID-19 महामारी:

- COVID-19 महामारी से कोई भी देश अकेले नहीं निपट सकता है, ऐसे में इस महामारी ने तात्कालिक और स्थायी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता को रेखांकित किया है।
- WTO इस चुनौती के दौरान आपूर्ति शृंखलाओं में पारदर्शिता और उनकी मज़बूती सुनिश्चित कर वैक्सीन के मानकीकरण में समन्वय और आयात या निर्यात से जुड़ी बाधाओं को हटाते हुए इस महामारी के दुष्प्रभावों को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- इसके अतिरिक्त WTO द्वारा COVID-19 वैक्सीन के कुछ ही देशों तक सीमिति रहने की बजाय इससे जुड़े बौद्धिक संपदा अधिकारों के स्वैच्छिक साझाकरण को प्रोत्साहित करने जैसे प्रयासों के माध्यम से विश्व के सभी देशों तक इसकी पहुँच सुनिश्चित की जा सकती है।

निष्कर्ष

वर्तमान चुनौतियों को देखते हुए तात्कालिक रूप से WTO द्वारा सदस्य देशों के बीच विश्वास को मज़बूत करने हेतु आवश्यक कदम उठाया जाना बहुत ही आवश्यक होगा। इसके साथ ही WTO को सभी देशों के हितों की रक्षा और कुछ देशों के व्यापार संबंधी अनुचित व्यवहार को रोकने हेतु नए नियमों को लागू करने के लिये सभी देशों के साथ मिलकर कार्य करना होगा। भविष्य में WTO सदस्यों को 21वीं सदी के मुद्दों पर बातचीत को आगे बढ़ाने के साथ ही कृषि और विकास जैसे अनसुलझे पुराने व्यापार मुद्दों पर नजर रखकर इनके बीच संतुलन स्थापित करना होगा।

सीमा पार जल प्रशासन

संदर्भ:

- हाल में चीन द्वारा वास्तविक नियंत्रण रेखा (LOC) के निकट तिब्बत में ब्रह्मपुत्र नदी पर बाँध बनाए जाने की योजना के संदर्भ में कई रिपोर्ट्स सामने आई हैं। इस कदम का पूर्वोत्तर भारत की जल सुरक्षा पर दूरगामी प्रभाव हो सकता है। गौरतलब है कि दक्षिण एशियाई देशों से होकर बहने वाली कई प्रमुख नदियाँ जैसे-सिंधु, ब्रह्मपुत्र, गंगा और इनकी कई सहायक नदियों का उद्गम स्थान तिब्बत में ही है।

- प्रमुख नदियों की सीमा पार प्रकृति और इस संदर्भ में उपरी प्रवाह का देश होने के कारण चीन को बढ़त प्राप्त है जिसकी वजह से वह तिब्बत से निकलने वाली नदियों के प्रवाह को कम करने या इसे मोड़ने के लिये बाँध या अन्य अवसंरचनाएँ स्थापित कर सकता है।
- गौरतलब है की पूरे दक्षिण एशिया के अलग-अलग क्षेत्र उच्च से लेकर अत्यंत उच्च जल-तनाव वाले क्षेत्रों में आते हैं, ऐसे में सीमा पार नदी सहयोग (Trans-Boundary Rivers Cooperation) पर एक तंत्र की स्थापना करना बहुत आवश्यक हो जाता है।

सीमा पार नदी सहयोग का महत्त्व:

- **जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में:** सीमा पार जल सहयोग कई अन्य व्यापक लाभ के कार्य करने और उन्हें भुनाने का अवसर प्रदान करता है। जैसे-जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु साझा प्रयासों को मज़बूत करना और जल संसाधनों से जुड़े आपसी संघर्ष को रोकना तथा उन्हें हल करना।
  - इसके अतिरिक्त हिमालय क्षेत्र में बाँध के निर्माण से चरम प्राकृतिक आपदाओं जैसे-बाढ़, सूखा , भू-स्खलन, वनाग्नि और कई अन्य पारिस्थितिक खतरों की आवृत्ति में वृद्धि हो सकती है, जो प्रशासन के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न करेगा।
- **सतत् विकास लक्ष्य के संदर्भ में:** पानी से संबंधित एसडीजी लक्ष्यों और अन्य व्यापक सतत् विकास लक्ष्यों को साकार करने के लिये सीमा पार जल सहयोग के महत्त्व को स्वीकार करना बहुत आवश्यक है।
  - गौरतलब है कि एसडीजी 6.5 लक्ष्य के तहत 'सीमा पार जल सहयोग सहित सभी स्तरों पर एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन को लागू करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
- **क्षेत्रीय विकास के संदर्भ में:** अंतर्राष्ट्रीय जल, देशों के मध्य संबंधों को मज़बूत करने में एक उत्प्रेरक का कार्य कर सकता है, इसी प्रकार सीमा पार जल सहयोग से अक्सर जलधारा को साझा करने वाले देशों के बीच व्यापक आर्थिक एकीकरण की दिशा में सुधार देखा गया है।
  - सीमा पार जल सहयोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, आर्थिक विकास, नौपरिवहन, ऊर्जा उत्पादन, वन्यजीव संरक्षण और व्यापक क्षेत्रीय एकीकरण में सुधार के लिये उत्प्रेरक का कार्य कर सकता है।
  - सीमा पार जल सहयोग की व्यवस्था निवेशकों को एक स्थिर और विश्वसनीय कानूनी एवं संस्थागत वातावरण प्रदान करके निवेश को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

चुनौतियाँ:

- **प्राकृतिक बढ़त:**
  - नदियों के ऊपरी प्रवाह क्षेत्रों में बाँधों या जल के प्रवाह की दिशा बदलने के लिये परियोजनाओं के विकास का निचले प्रवाह पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, ऐसी स्थिति में जलधारा के उद्गम से दूर के क्षेत्र या देश में रह रहे लोगों को जितना भी जल प्राप्त हो रहा हो उन्हें स्वीकार करना पड़ता है।
- **अंतर्राष्ट्रीय कानूनों की अनदेखी:** हालाँकि वर्तमान में सीमा पार नदियों से जुड़े मामलों के प्रशासन के बारे में एक अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय लागू है परंतु अभी भी दक्षिण एशिया में नदी प्रणालियों के प्रबंधन के लिये सहकारी ढाँचे की कमी है।
  - विश्व भर में लगभग 60% सीमा पार नदी घाटियों में अभी भी कोई सहकारी व्यवस्था नहीं है।
  - इसके अलावा मौजूदा सीमा पार जल संधियाँ और संस्थाएँ अक्सर अपने जनादेश, डिज़ाइन, संसाधन और प्रवर्तन तंत्र के संदर्भ में कमज़ोर होती हैं।

सीमा पार नदियों को लेकर मौजूदा कानूनी ढाँचा:

- अंतर्राष्ट्रीय जलधाराओं के गैर-नौपरिवहन उपयोग के कानून पर अभिसमय, 1997।
- सीमा पार जलधाराओं और अंतर्राष्ट्रीय झीलों के संरक्षण तथा उपयोग पर हेलसिंकी कन्वेंशन, 1992।
- **विश्वास की कमी:** सीमा पार जल प्रशासन की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा जल संसाधनों की कमी न होकर सामाजिक संसाधनों की कमी और चीन तथा अन्य दक्षिण एशियाई देशों के बीच 'शक्ति संतुलन की कमी होना है।
- **लंबी अवधि की विकास प्रक्रिया:** जल संसाधनों की अनेक कारकों पर निर्भरता के कारण सभी हितधारकों के बीच एक आम सहमति बनाने में काफी समय लग सकता है और इस दौरान एक छोटा राजनीतिक मतभेद भी सहयोग ढाँचे के विकास की प्रक्रिया को बाधित कर सकता है।

नोट :

आगे की राह:

- जल कूटनीति: जल कूटनीति को लागू कर सीमा-पार नदी गवर्नेंस को अपनाया जा सकता है।
    - जल कूटनीति की प्रक्रिया संप्रभु राष्ट्रीय सरकारों के प्रशासन के तहत संचालित होती है परंतु यह नगरपालिकाओं और राज्य के स्तर सहित कई हितधारकों के बीच सहयोग का मार्ग प्रसस्त करती है।
- **नदी बेसिन प्रबंधन:** नदियों को राजनीतिक सीमाओं की दृष्टि से देखने की बजाय नदी बेसिन प्रबंधन के दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है।
    - यह दृष्टिकोण भूदृश्य और जलग्रहण क्षेत्र की अखंडता का सम्मान करता है।
- **संस्थागत ढाँचे की स्थापना:** देशों के बीच समझौते और नदी बेसिन संगठन जैसी संस्थागत व्यवस्थाएँ सीमा पार जल के समान एवं स्थायी प्रबंधन हेतु महत्त्वपूर्ण साधन प्रदान कर सकती हैं।
    - एक सीमा पार जल प्रशासन ढाँचे में नदी बेसिन और जलभृतों में जल साझा करने, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये कानूनी फ्रेमवर्क का पालन करने तथा सीमा पार जल प्रशासन के लिये संयुक्त संस्थानों की स्थापना करने जैसे पहलुओं को शामिल किया जाना चाहिये।
    - इसके अतिरिक्त सीमा पार जल संबंधित आँकड़ों को एकत्र करने, उन्हें साझा करने और उनके विश्लेषण हेतु साझा मानकों को अपनाया जाना भी बहुत आवश्यक है।

निष्कर्ष:

प्राकृतिक आपदा और जलवायु का प्रभाव देश की सीमाओं पर आकर रुक नहीं जाता और वर्तमान में पहले से ही लगभग दो बिलियन लोग जल संकट का दबाव झेल रहे क्षेत्रों में रह रहे हैं। इस संदर्भ में बगैर सीमा पार जल सहयोग के समावेशी सतत् विकास व्यापक रूप से प्रभावित होगा और शांति तथा सुरक्षा के जोखिम में वृद्धि होगी।

भारत के लिये दो मोर्चों पर युद्ध की चुनौती

- पिछली शताब्दी में सुरक्षा की दृष्टि से भारत की रणनीतिक सोच पाकिस्तान और उसके कारण उत्पन्न वाली सुरक्षा चुनौतियों पर ही केंद्रित रही है। परंतु हाल के दशकों में भारत के सैन्य विशेषज्ञों का मत इस दृष्टिकोण को लेकर दृढ़ हुआ है कि भारत के लिये चीन-पाकिस्तान का साझा सैन्य खतरा एक वास्तविक संभावना हो सकता है।
- मई 2020 में लद्दाख में चीनी सेना की घुसपैठ और इससे जुड़ी वार्ताओं के गतिरोध ने चीनी सैन्य खतरे को अधिक स्पष्ट और वास्तविक बना दिया है। हालाँकि कुछ मीडिया खबरों के अनुसार, पाकिस्तान ने हाल में गिलगित-बाल्टिस्तान क्षेत्र में 20,000 अतिरिक्त सैनिकों की तैनाती करते हुए इस क्षेत्र में अपनी सैन्य शक्ति को लद्दाख में चीनी सैन्य तैनाती के बराबर कर लिया है।
- इसे देखते हुए दो मोर्चों (LOC और LAC के संदर्भ में) पर खतरे के लिये तैयार रहना भारत का एक समझदारी भरा निर्णय माना जाएगा।

चीन और पाकिस्तान की बढ़ती सैन्य साझेदारी:

- सैन्य क्षेत्र में चीन-पाकिस्तान की साझेदारी कोई नई बात नहीं हैं परंतु वर्तमान में इसके प्रभाव पहले से कहीं अधिक गंभीर हो गए हैं।
    - चीन दक्षिण एशिया में भारत के बढ़ते प्रभुत्व को चुनौती देने के लिये पाकिस्तान को अपने अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप के साधन के रूप में देखता है।
    - चीन अपनी 'चेक बुक कूटनीति' (Chequebook Diplomacy) के माध्यम से दक्षिण एशियाई पड़ोसी देशों पर भी इसी प्रकार का प्रभाव/आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। ऐसा करते हुए चीन सैन्य संघर्ष में ही भारत के आर्थिक संसाधनों को खत्म करना चाहेगा।
    - ऐसे में दोहरे मोर्चे पर युद्ध की स्थिति दक्षिण एशिया में भारत के प्रभुत्व को कम करने के संदर्भ में चीन की एक संभावित रणनीति हो सकती है।
- पिछले कुछ वर्षों में चीन और पाकिस्तान के संबंधों में निरंतर मज़बूती आई है, इसके साथ ही उनकी रणनीतिक विचारधारा में भी व्यापक समन्वय देखने को मिला है।
    - इस बात को चीन द्वारा 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे' (China Pakistan Economic Corridor-CPEC) के माध्यम से पाकिस्तान में किये गए व्यापक निवेश के रूप में समझा जा सकता है।

- इसके अतिरिक्त हाल के वर्षों में दोनों देशों के बीच सैन्य सहयोग में भी वृद्धि हुई है, गौरतलब है कि वर्ष 2015-19 के बीच पाकिस्तान के कुल सैन्य आयात में चीन की भागीदारी लगभग 73% थी।

भारत और दो मोर्चों पर युद्ध से जुड़ी चुनौतियाँ:

- **क्षेत्रीय शांति के लिये संकट:** दो मोर्चों पर संघर्ष की स्थिति जो कि दक्षिण एशिया के तीन परमाणु हथियार संपन्न देशों के बीच एक वास्तविक युद्ध में भी बदल सकती है, इस क्षेत्र की स्थिरता के लिये बड़ी चुनौती होगी।
- **भारत की दुविधा:** दो मोर्चों पर संघर्ष की स्थिति भारतीय सेना के समक्ष संसाधन और रणनीति की दो प्रमुख दुविधाएँ खड़ी करेगी।
  - **संसाधन:** दो मोर्चों पर संघर्ष की स्थिति में उपलब्ध संसाधनों के आवंटन के दौरान उनकी मात्रा का निर्धारण एक महत्त्वपूर्ण और अत्यधिक जटिल निर्णय होगा।
    - उदाहरण के लिये कुछ अनुमानों के अनुसार, दो मोर्चों पर ऐसे गंभीर खतरे से निपटने के लिये लगभग 60 लड़ाकू स्क्वाड्रन की आवश्यकता होगी जो भारतीय वायु सेना के तहत कार्यरत वर्तमान स्क्वाड्रन की संख्या का दोगुना है।
  - **रणनीति:** यदि भारतीय थल सेना और वायु सेना की अधिकांश संसाधनों को उत्तरी सीमा की ओर भेज दिया जाता है, तो ऐसी स्थिति में पश्चिमी सीमा के लिये सेना को अपनी रणनीति पर पुनर्विचार करना होगा।
    - इसके साथ ही पाकिस्तान के साथ आक्रामक रणनीति को अपनाना हमें सीमित संसाधनों के साथ एक बड़े संघर्ष के लिये खड़ा कर सकता है।
  - **आर्थिक चुनौतियाँ:** गौरतलब है कि देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति को देखते हुए आने वाले वर्षों में रक्षा बजट में कोई बड़ी वृद्धि करना संभव नहीं होगा। ऐसे में सैन्य क्षमता बढ़ाने पर भी गहन चर्चा की आवश्यकता होगी।

आगे की राह:

- **सुरक्षा रणनीति की आवश्यकता:** एक सुरक्षा रणनीति/सिद्धांत के विकास के लिये राजनीतिक नेतृत्त्व से व्यापक समन्वय की आवश्यकता होगी। बगैर राजनीतिक उद्देश्य और मार्गदर्शन के तैयार किया गया कोई भी सिद्धांत अपने कार्यान्वयन के परीक्षण में सफल नहीं होगा।
- **तकनीकी के साथ समन्वय:** वर्तमान में रक्षा क्षेत्र में विमान, जहाज़ और टैंक जैसे प्रमुख प्लेटफॉर्मों पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है, जबकि भविष्य की तकनीकों जैसे कि रोबोटिक्स, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, साइबर, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध आदि पर पर्याप्त निवेश नहीं किया जा रहा है।
  - भविष्य की चुनौतियों को देखते हुए तथा चीन और पाकिस्तान की युद्ध लड़ने की रणनीतियों के विस्तृत आकलन के आधार पर सैन्य क्षेत्र में तकनीकी के प्रयोग के संदर्भ में सही संतुलन स्थापित करना बहुत आवश्यक होगा।
- **कूटनीति की महत्त्वपूर्ण भूमिका:** भारतीय सीमा सुरक्षा के संदर्भ में इस दोहरी चुनौती से निपटने में कूटनीति की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होगी।
  - **दक्षिण एशियाई पड़ोसियों के साथ संबंधों में सुधार:** चीन और पाकिस्तान हमेशा ही भारत को इस क्षेत्र में सीमित करने और रोकने का प्रयास करेंगे, ऐसे में एक अमत्रिवत पड़ोस में फँसे रहने की बजाय अन्य पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को मज़बूत करना भारत के लिये लाभदायक होगा।
  - **विस्तारित पड़ोस के साथ संबंधों में सुधार:** ऊर्जा सुरक्षा, समुद्री सहयोग और अपने विस्तारित पड़ोस के बीच सहयोग को बढ़ाने के लिये भारत को ईरान सहित पश्चिमी एशिया के अन्य देशों के साथ वर्तमान साझेदारी को और अधिक मज़बूती प्रदान करनी होगी।
  - **रूस के साथ संबंधों में सुधार:** भारत को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि भारत-अमेरिका संबंधों की मज़बूती के लिये रूस के साथ उसे अपने संबंधों का बलिदान न देना पड़ सकता है। गौरतलब है कि भारत के खिलाफ किसी क्षेत्रीय गठजोड़ की गंभीरता को कम करने में रूस एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
  - **कश्मीर पर विशेष ध्यान:** भारत के समक्ष उत्पन्न यह दोहरी चुनौती कश्मीर में शांति और स्थिरता के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक नेतृत्त्व के लिये एक बड़ी चेतावनी है। दीर्घकालिक दृष्टिकोण से कश्मीर में प्रभावित नागरिकों की समस्याओं के समाधान के उद्देश्य से राजनीतिक पहुँच का प्रयास एक सकारात्मक कदम होगा।

निष्कर्ष:

अपनी सैन्य आक्रामकता के साथ एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरता हुआ चीन वर्तमान में भारत के लिये एक बड़ी रणनीतिक चुनौती है और साथ ही पाकिस्तान भी क्षेत्र में भारत के प्रभुत्व को सीमित करने की चीनी रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट है कि चीन और पाकिस्तान के साथ दो मोर्चों पर युद्ध के खतरे से इनकार नहीं किया जा सकता, ऐसे में भारत को इस संभावित चुनौती से निपटने के लिये अपने सिद्धांतों और सैन्य क्षमता दोनों के विकास पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

हिंद-प्रशांत क्षेत्र में यूरोप की भूमिका

संदर्भ:

एशिया में चीन के एक महाशक्ति के रूप में उभरने के साथ ही इसने क्षेत्र के शक्ति संतुलन को भी प्रभावित किया है। हाल में वास्तविक नियंत्रण रेखा (LOC) पर चीनी सेना के साथ संघर्ष की स्थिति और हिंद महासागर क्षेत्र में चीन की आक्रामकता ने भारत के लिये एक गंभीर भू-रणनीतिक चुनौती खड़ी कर दी है। ऐसे में चीनी आक्रामकता का दृढ़ता से मुकाबला करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय गठबंधनों को मज़बूत करना भारतीय विदेशी एवं सुरक्षा नीति की एक महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता होगी। इस संदर्भ में अमेरिका (USA) भारत के लिये एक महत्त्वपूर्ण सुरक्षा सहयोगी बन गया है। हालाँकि अमेरिकी नीति की राजनीतिक अनिश्चितता से बचने के लिये भारत को रणनीतिक रूप से यूरोपीय शक्तियों के साथ सहयोग (विशेष रूप से हिंद-प्रशांत क्षेत्र के संदर्भ में) को बढ़ाना होगा।

हिंद-प्रशांत क्षेत्र में यूरोपीय देशों के साथ सहयोग के हालिया प्रयास:

- हिंद-प्रशांत क्षेत्र से जुड़े हालिया तीन घटनाक्रम यूरोप के प्रति भारत की बदलती रणनीतिक धारणा को रेखांकित करते हैं:
    - पहला, हिंद महासागर रिम एसोसिएशन (Indian Ocean Rim Association - IORA) में फ्राँस की सदस्यता के लिये भारत का समर्थन।
    - दूसरा, हिंद-प्रशांत क्षेत्र में यूरोप की बड़ी भूमिका के लिये भारत की सहमति। भारत ने हिंद-प्रशांत में एक नए भू-राजनीतिक तंत्र के निर्माण के लिये जर्मनी और नीदरलैंड की इच्छा का स्वागत किया है।
    - तीसरा, हिंद-प्रशांत क्षेत्र में सुरक्षा सहयोग भारत और ब्रिटेन के बीच संबंधों में एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में भी उभर रहा है।

हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-यूरोप सहयोग का महत्त्व:

- **बहु-ध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था:** वर्तमान में भारत द्वारा अमेरिका और चीन के बीच द्विध्रुवीय प्रतिस्पर्द्धा से परे एक बहु-ध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था की स्थापना पर कार्य करने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।
- **गैर-क्षेत्रीय शक्तियों की भागीदारी का स्वागत:** भारत क्षेत्रीय और गैर-क्षेत्रीय कारकों से प्रभावित अपने पूर्व के हिंद-प्रशांत दृष्टिकोण से स्वयं को अलग कर रहा है।
- **उत्तर-औपनिवेशिक मानसिकता से प्रस्थान:** भारत ने हिंद-प्रशांत क्षेत्र में यूरोपीय देशों के साथ काम करते हुए क्षेत्रीय सुरक्षा सहयोग के संदर्भ में उत्तर-औपनिवेशिक काल के मानसिक द्वन्द्वको पीछे छोड़ दिया है।
    - द्वितीय विश्व युद्ध (Second World War) के बाद शीत युद्ध (Cold War) की द्विध्रुवीय व्यवस्था (पूर्व-पश्चिम आयाम) और उत्तर-दक्षिण ढाँचे (विकासशील बनाम विकसित देश) ने भारत को यूरोप की राजनीतिक स्वायत्तता के बारे में अधिक गहन दृष्टिकोण अपनाने से रोक रखा था।

चुनौतियाँ:

- **भिन्न दृष्टिकोणों का समेकन:** कई बहुपक्षीय मंचों पर यूरोपीय संघ के एक बड़ी शक्ति होने के बावजूद इसमें शामिल देशों की विदेश नीति के सभी पहलुओं में समन्वय स्थापित करने में कई मतभेद हैं।
    - उदाहरण के लिये ब्रेक्ज़िट (Brexit) के बाद यूके (UK) एक स्वतंत्र विदेशी नीति (यूरोपीय संघ के अन्य देशों के प्रभावों से मुक्त) का अनुसरण करते हुए अपने लिये एक नई अंतर्राष्ट्रीय भूमिका गढ़ना चाहता है।
- **पूर्व के विवाद:** पश्चिमी हिंद-महासागर क्षेत्र में विउपनिवेशीकरण काल से संबंधित फ्राँस और ब्रिटेन के मध्य कुछ विवाद अभी भी बने हुए हैं।

- **चीन से सीधा टकराव:** क्वाड (QUAD) समूह के तहत विश्व की चार लोकतांत्रिक और महत्त्वपूर्ण शक्तियों के साथ आने तथा उनके द्वारा साझा नौसैनिक अभ्यास (मालाबार नौसैनिक अभ्यास के तहत) को चीन अपनी घेराबंदी के प्रयास के रूप में देखता है।
  - इसी प्रकार यूरोपीय देशों का हिंद-प्रशांत क्षेत्र में शामिल होना, चीनी आक्रामकता में तेज़ी का कारण बन सकता है।
  - चीन के साथ यूरोपीय देशों की आर्थिक साझेदारी को देखते हुए इस बात की संभावना बहुत ही कम है कि यूरोप शीघ्र ही हिंद-प्रशांत रणनीति में अपनी शक्ति का विस्तार शुरू कर देगा।

आगे की राह:

- **भू-आर्थिक सहयोग:** भारत यूरोपीय देशों को सैन्य दृष्टिकोण से न सही परंतु आर्थिक रूप से हिंद प्रशांत क्षेत्र में अपनी भागीदारी बढ़ाने के लिये प्रेरित कर सकता है।
  - भारत हिंद-प्रशांत विमर्श को दिशा देने के लिये राजनीतिक प्रभुत्त्व और अपनी महत्त्वपूर्ण सॉफ्ट पॉवर का लाभ उठाने के अतिरिक्त क्षेत्रीय अवसंरचना के सतत् विकास के लिये बड़े पैमाने पर आर्थिक संसाधन जुटाने पर ध्यान केंद्रित कर सकता है।
- **भारत-ईयू व्यापार संधि को अंतिम रूप देना:** भारत और यूरोपीय संघ (EU) द्वारा काफी समय से एक मुक्त व्यापार संधि पर चर्चा की जा रही है परंतु यह वर्ष 2007 से ही लंबित है।
  - ऐसे में भारत और ईयू के बीच विभिन्न क्षेत्रों में बेहतर समन्वय बनाने के लिये दोनों पक्षों को शीघ्र ही इस मुक्त व्यापार संधि को अंतिम रूप देने पर कार्य करना होगा।
- **महत्त्वपूर्ण शक्तियों के साथ सहयोग:** वर्ष 2018 की शुरुआत में फ्राँसीसी राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रॉन की भारत की यात्रा ने रणनीतिक साझेदारी को फिर से जीवंत करने के लिये एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की।
  - फ्राँस के साथ भारत की साझेदारी को अब हिंद-प्रशांत के दृष्टिकोण के माध्यम से एक मज़बूत क्षेत्रीय आधार प्राप्त हुआ है।
  - साथ ही फ्राँस पश्चिमी हिंद महासागर और दक्षिण प्रशांत महासागर में अपने द्वीपों तथा ऐतिहासिक सैन्य उपस्थिति के माध्यम से चीन के समुद्री विस्तार से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों को शीघ्र ही पहचानने में सक्षम होगा।
  - इसके अतिरिक्त भारत को अन्य मध्यम शक्तियों को शामिल करने वाले बहुपक्षीय समूहों (जैसे भारत-ऑस्ट्रेलिया-जापान फोरम और फ्राँस व ऑस्ट्रेलिया के साथ त्रिपक्षीय वार्ता आदि) के एक नेटवर्क के माध्यम से अमेरिका के साथ अपनी साझेदारी को अतिरिक्त बल प्रदान करने पर विशेष ध्यान देना होगा।

निष्कर्ष:

यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ सुरक्षा सहयोग में वृद्धि इस दशक में भारतीय विदेश नीति की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बन गई है, तो भारत के लिये यूरोपीय देशों के लिये अपनी रणनीतिक पहल को एकीकृत करना आगामी दशक का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये।

The Vision

नोट :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

जैव ईंधन: संभावनाएँ और चुनौतियाँ

संदर्भ:

- भारत जैसे-जैसे स्थायी ऊर्जा संसाधनों की ओर बढ़ रहा है, इसके लिये अपनी अलग-अलग ज़रूरतों के बीच समन्वय स्थापित करना एक चुनौती बनती जा रही है। इन चुनौतियों में ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करना, विद्युत की वहनीयता को बनाए रखते हुए ग्रिडों को हरित ऊर्जा से जोड़ना, रोज़गार के अवसरों को बढ़ाते हुए ऊर्जा उत्पादन के पुराने तरीकों को बदलना आदि शामिल है।
- इस संदर्भ में जैव-ईंधन (इथेनॉल, संपीड़ित जैव गैस और बायोडीज़ल) इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण बनकर उभरा है। जैव-ईंधन तेल आयात पर निर्भरता और पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के साथ ही किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्तर पर रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने में सहायक हो सकता है।

आर्थिक सुरक्षा और जैव-ईंधन:

- चीनी उद्योग के लिये सहायक: भारत में इथेनॉल उत्पादन के लिये प्रयोग किया जाने वाला प्रमुख कच्चा माल गन्ना और इसके उप-उत्पाद हैं जो 'इथेनॉल सम्मिश्रण कार्यक्रम' (Ethanol Blending Programme- EBP) के तहत 90% तेल उत्पादन के लिये उत्तरदायी है।
    - यह कार्यक्रम आर्थिक दबाव झेल रहे चीनी उद्योग में तरलता बढ़ाने के साथ किसानों को आय का एक वैकल्पिक साधन उपलब्ध कराता है।
- **कृषि बाज़ारों का विविधीकरण:** भारतीय खाद्य निगम के तहत भंडारित अधिशेष चावल और मक्के को इथेनॉल उत्पादन हेतु प्रयोग किये जाने के हालिया निर्णय का अर्थ है कि इससे किसानों को अपने उत्पाद के लिये एक वैकल्पिक बाज़ार मिल सकेगा।
- **बंजर भूमि से आय:** जैव-ईंधन के संदर्भ में 'राष्ट्रीय जैव-ईंधन नीति-2018' के तहत वर्ष 2030 तक पारंपरिक डीज़ल में 5% जैव-ईंधन मिश्रण का लक्ष्य रखा गया है।
    - यह नीति गैर-खाद्य तिलहनों, प्रयुक्त कुकिंग ऑयल और लघु अवधि वाली फसलों से बायोडीज़ल उत्पादन के लिये आपूर्ति शृंखला तंत्र की स्थापना को प्रोत्साहित करती है।
    - इन फसलों को विभिन्न राज्यों के उन क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है, जो या तो बंजर हैं या खाद्य फसलों के लिये उपयुक्त नहीं हैं। इस प्रकार जैव-ईंधन के लिये चिह्नित फसलों का उत्पादन कृषि आय को बढ़ावा देता है।

पर्यावरण सुरक्षा और जैव-ईंधन:

- **वायु प्रदूषण को कम करना:** देश के विभिन्न अपशिष्ट बायोमास स्रोतों से 'संपीड़ित जैव-गैस' (Compressed Bio-Gas-CBG) उत्पादन के लिये एक पारिस्थितिकी तंत्र स्थापित करने हेतु अक्तूबर 2018 में 'किफायती परिवहन के लिये टिकाऊ विकल्प' या 'सतत' (Sustainable Alternative towards Affordable Transportation-SATAT) नामक योजना की शुरुआत की गई थी।
    - सतत योजना के तहत प्रस्तावित संयंत्रों (विशेषकर हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश) में संपीड़ित जैव-गैस के उत्पादन के लिये कच्चे माल के रूप में फसलों के अवशेष जैसे- धान का पुआल और बायोमास का उपयोग किया जाएगा।
    - सतत योजना न सिर्फ ग्रीनहॉउस गैसों के उत्सर्जन को रोकने में सहायक होगी बल्कि यह कृषि क्षेत्र में फसलों के अवशेषों जैसे-पराली आदि को जलाने की घटनाओं को कम करने में सहायक होगी, जो कि दिल्ली जैसे शहरों में वायु प्रदूषण की वृद्धि का एक प्रमुख कारण है।
    - 'संपीड़ित जैव-गैस' संयंत्रों से निकलने वाले उपोत्पादों में से एक जैव खाद है, जिसका उपयोग खेती में किया जा सकता है।

- इसके अतिरिक्त यह ग्रामीण और अपशिष्ट प्रबंधन क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों का विकास करने के साथ किसानों के अनुपयोगी जैव-कचरे के सदुपयोग के माध्यम से उनकी आय में वृद्धि करने में सहायक होगा।

ऊर्जा सुरक्षा और जैव-ईंधन:

- **तेल आयात में कमी:** वर्तमान में भारत अपनी ऊर्जा ज़रूरतों को पूरा करने के लिये देश में खनिज तेल और गैस की कुल मांग का क्रमशः 84% तथा 56% अन्य देशों से आयात करता है, खनिज तेल की कुछ मात्रा को जैव-ईंधन से प्रतिस्थापित कर आयात पर निर्भरता को कम करने में सहायता प्राप्त होगी।
  - वर्तमान में पेट्रोल में इथेनॉल समिश्रण वर्ष 2022 तक 10% और वर्ष 2030 तक 20% करने का लक्ष्य रखा गया है, जो वाहनों से होने वाले उत्सर्जन को काम करने में सहायक होगा।
- **ऊर्जा का नवीकरणीय स्रोत:** खनिज तेल, जो कि एक क्षयशील संसाधन है, के विपरीत जैव-ईंधन का उत्पादन अक्षय स्रोतों से किया जाता है। ऐसे में सैद्धांतिक रूप से जैव-ईंधन के उत्पादन और इसके उपयोग को अनंत काल तक स्थायी रूप से जारी रखा जा सकता है।

चुनौतियाँ:

- खाद्य सुरक्षा और खाद्य पदार्थों के मूल्य में वृद्धि: जैव-ईंधन उत्पादन में कच्चे माल के रूप में अधिकांशतः कई ऐसी फसलों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप (जैसे-मानव आहार) या अप्रत्यक्ष रूप (जैसे-पशुओं के आहार के रूप में) से दैनिक जीवन में प्रयोग किया जाता है।
  - इन फसलों का प्रयोग जैव-ईंधन के लिये किये जाने से कृषि भूमि के क्षेत्रफल और इन फसलों के उत्पादन को बढ़ाने हेतु प्रदूषणकारी कीटनाशकों तथा उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि होगी।
  - इसके साथ ही ऐसे कृषि उत्पादों की मांग बढ़ने के कारण खाद्य पदार्थों के मूल्य में भी वृद्धि हो सकती है।
- **तकनीकी सीमाएँ:** जैव-ईंधन के प्रयोग में कई अन्य प्रकार की तकनीकी समस्याएँ भी जुड़ी हुई हैं, जैसे- लंबे समय तक संचालन के लिये वाहन के इंजन की क्षमता आदि।
- **वनोन्मूलन और कृषि क्षेत्र में वृद्धि:** जैव-ईंधन के उत्पादन के लिये आवश्यक कच्चे माल के रूप में प्रयोग की जाने वाली फसलों को उष्णकटिबंधीय जंगलों से साफ की गई भूमि पर उगाया जाता है, भूमि उपयोग के पैटर्न में इस प्रकार का बदलाव स्थलीय कार्बन स्टॉक को वातावरण में मुक्त कर ग्रीनहॉउस गैसों के उत्सर्जन को बढ़ा सकता है।

आगे की राह:

- **सहयोगात्मक प्रयास:** जैव-ईंधन की व्यापक बदलावकारी क्षमता का सदुपयोग केवल छात्रों, अध्यापकों, वैज्ञानिकों, उद्यमियों और अन्य हितधारकों के साझा सहयोग के माध्यम से ही किया जा सकता है।
- **जैव-रिफाइनरियों को मंज़ूरी देने में तेज़ी:** सतत योजना का पूरा लाभ प्राप्त करने के लिये जैव-रिफाइनरियों की स्थापना हेतु आवश्यक सरकारी मंज़ूरी की प्रक्रिया को आसान और तेज़ बनाना बहुत ही आवश्यक है।
  - इस संदर्भ में परियोजनाओं को पर्यावरणीय मंज़ूरी देने के लिये परिवेश पोर्टल की स्थापना एक सकारात्मक कदम है।
- **तकनीकी हस्तक्षेप:** बायोडीज़ल के व्यावसायीकरण के लिये डेडीकेटेड बायोडीज़ल इंजन के विकास को बढ़ावा देना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।
  - इस संदर्भ में भारत को ब्राज़ील से सीख लेनी चाहिये, क्योंकि उसने लचीले ईंधन वाले वाहनों (FFV) के विकास में वृद्धि कर अपने जैव-एथेनॉल विपणन को सफलतापूर्वक बढ़ाया, इन वाहनों में इथेनॉल और गैसोलीन दोनों के लिये एक डेडीकेटेड इंजन होता है।
  - इसके अलावा, जैव-ईंधन की दूसरी और तीसरी पीढ़ी के अनुसंधान और विकास में निवेश किए जाने की भी आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

जैव-ईंधन आपूर्ति श्रृंखला के घटक एक ऐसी चक्रीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का निर्माण करते हैं जो समुदायों को व्यापक पर्यावरणीय, सामाजिक-आर्थिक और स्वास्थ्य लाभ उपलब्ध कराते हैं।

नोट :

सामाजिक न्याय

अंतर-धार्मिक विवाह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता

संदर्भ:

- हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अध्यादेश, 2020' जारी किया गया है। देश में कई अन्य राज्यों की सरकारें भी ऐसे ही कानूनों को लागू करने की प्रक्रिया में हैं। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी अध्यादेश बल पूर्वक, प्रभाव दिखाकर, प्रलोभन, धोखाधड़ी से या विवाह के उद्देश्य से किये जाने वाले किसी भी धर्मांतरण को प्रतिबंधित करता है, साथ ही इस तरह के विवाह को अवैध घोषित किये जाने का प्रावधान भी करता है। इस अध्यादेश के तहत ऐसे धर्मांतरण को एक गैर-जमानती अपराध माना गया है।
- हालाँकि इस कानून की यह कहते हुए आलोचना की गई है कि यह किसी व्यक्ति के अपनी पसंद से विवाह करने के अधिकार का उल्लंघन के साथ ही जीवन, स्वायत्तता तथा गोपनीयता के मौलिक अधिकार के खिलाफ भी है। इसके अलावा इस कानून की जड़ें पितृसत्ता और सांप्रदायिकता से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं , जो सामाजिक सौहार्द तथा व्यक्तिगत गरिमा के सम्मान को प्रभावित कर सकती हैं।

अध्यादेश से संबंधित मुद्दे:

- **धर्मनिरपेक्षता के मार्ग में हस्तक्षेप:** भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता को बुनियादी सिद्धांतों के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है।
  - इसके बावजूद देश के कई राज्यों में लंबे समय से धर्मांतरण विरोधी कानून लागू हैं, जिनमें ओडिशा, अरुणाचल प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश और झारखंड जैसे राज्य शामिल हैं।
- **व्यक्तिगत स्वतंत्रता के खिलाफ:** भारतीय संविधान के अनुच्छेद-25 से 28 तक एक भारतीय नागरिक को अपनी पसंद के किसी भी धर्म को मानने, उसके नियमों का पालन करने और उसका प्रचार करने का अधिकार प्रदान किया गया है।
  - जबकि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा लाया गया हालिया अध्यादेश किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पसंद के जीवनसाथी का चुनाव करने में हस्तक्षेप कर उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करता है।
- **उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के विपरीत:** शफीन जहां बनाम अशोक केएम (2018) मामले में उच्चतम न्यायालय ने 'अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह के अधिकार' को भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत प्राप्त अधिकारों का हिस्सा बताया।
  - उच्चतम न्यायालय के अनुसार, संविधान किसी भी व्यक्ति के अपनी पसंद का जीवन जीने या विचारधारा को अपनाने की क्षमता/स्वतंत्रता की रक्षा करता है। अत: एक व्यक्ति द्वारा अपनी पसंद के किसी व्यक्ति से विवाह करने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद-21 का अभिन्न अंग है।
  - इसके अलावा उच्चतम न्यायालय ने के.एस. पुट्टास्वामी बनाम भारतीय संघ (2017) मामले का फैसला सुनाते हुए कहा कि "पारिवारिक जीवन के चुनाव का अधिकार" एक मौलिक अधिकार है।
  - उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा लाया गया हालिया अध्यादेश उच्चतम न्यायालय के इन निर्णयों से मेल नहीं खाता क्योंकि यह एक भावी जीवनसाथी के रूप में पसंद करने के किसी व्यक्ति के अधिकार को सीमित करता है, इसके अनुसार किसी महिला/पुरुष का पति/पत्नी केवल वही हो सकता है जो राज्य द्वारा अनुमोदित होगा।
- **प्रमाण प्रस्तुत करने का दायित्व:** उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी यह धर्मांतरण निषेध अध्यादेश महिला के किसी भी रिश्तेदार को उसके विवाह की वैधता को चुनौती देने की अनुमति देता है।
  - ऐसी स्थिति में प्रमाण का उल्टा असर पड़ेगा जिसके तहत धर्मांतरण और विवाह के लिये महिला के सहमत होने की गवाही की अनदेखी करते हुए धर्मांतरण कराने वाले व्यक्ति को यह साबित करना होगा कि धर्मांतरण के लिये महिला को विवश नहीं किया गया था।
  - यह 'दोषी साबित होने तक निर्दोष समझे जाने के अधिकार' का सीधा उल्लंघन है; अध्यादेश का यह पहलू विशेष रूप से जीवन साथी चुनने के अधिकार का प्रयोग करने वाली महिलाओं के संदर्भ में चिंताजनक है।

- **पितृसत्तात्मक जड़ें:** इससे पता चलता है कि वर्तमान में भी कानूनों में गहरी पितृसत्तात्मकता की जड़ें विद्यमान हैं, जिसके तहत महिलाओं को परिपक्व नहीं माना जाता और उन्हें माता-पिता तथा सामुदायिक नियंत्रण के अंतर्गत रखा जाता है। यदि उनके जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण फैसलों पर उनके अभिभावकों की सहमति न हो तो उन्हें अपने जीवन के फैसले लेने के अधिकार से भी वंचित रखा जाता है।
    - ऐतिहासिक रूप से विवाह को महिलाओं की यौनिकता को नियंत्रित करने, जातिगत वंशावली को बढ़ावा देने और महिलाओं को उनकी स्वायत्तता का प्रयोग करने से रोकने हेतु एक माध्यम के रूप में देखा जाता रहा है। इस प्रकार के सांप्रदायिक दुष्प्रचार का महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने में कोई योगदान नहीं होता है, बल्कि यह उनकी गतिशीलता, सामाजिक जीवन और पसंद आदि की स्वतंत्रता को कम करता है।

पूर्वाग्रह:

- अंतर-धार्मिक और अंतर-जातीय विवाह के प्रति यह गहरा विरोध समुदायों के बीच ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों से उपजा है।
- इस पूर्वाग्रह को देखते हुए मौलिक अधिकारों पर बनी उप-समिति के कुछ सदस्यों, विशेष रूप से महिला सदस्यों जिनमें राजकुमारी अमृत कौर और हंसा जीवराज मेहता भी शामिल हैं , ने अंतर-जातीय विवाह को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल करने मांग की थी।
- वे राज्य के लिये अंतर-धार्मिक विवाहों से जुड़ी किसी भी बाधा को हटाने हेतु एक संवैधानिक प्रावधान प्रस्तुत करना चाहते थे ताकि ऐसे विवाहों के विरूद्ध सामाजिक भेदभाव को हटाया जा सके।

निष्कर्ष:

वर्तमान में सभी धर्मों की युवा भारतीय महिलाएँ बढ़-चढ़ कर काम करने, अध्ययन करने, ऐसे व्यक्ति से विवाह करने जिसे वे स्वयं चुनें और जिसके साथ अपनी शर्तों पर जीवन जीने का फैसला करें आदि जैसी स्वतंत्रता की मांग कर रही हैं। ऐसे में न तो इन बुनियादी अधिकारों पर सवाल उठाया जाना चाहिये और न ही इन पर अंकुश लगाया जाना चाहिये। एक महिला की स्वायत्तता उसका अपना अधिकार है, किसी भी माता-पिता, रिश्तेदार या राज्य तंत्र को उससे इस स्वायत्तता को छीनने का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। एक महिला को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करने का प्रयास, एक ऐसी विनम्र महिला आबादी को तैयार करने का प्रयास है , जो वही करती है जैसा उसे बताया जाता है तथा सामाजिक और पारिवारिक निर्देशों के खिलाफ विद्रोह नहीं करती है।

वैवाहिक बलात्कार और भारतीय न्याय प्रणाली

संदर्भ:

- भारत में घरेलू हिंसा एक गंभीर समस्या रही है और हाल के वर्षों में इसमें वृद्धि देखी गई है। 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' (NCRB) द्वारा जारी 'भारत में अपराध-2019' (Crime in India-2019) रिपोर्ट के अनुसार, भारत में लगभग 70% महिलाएँ घरेलू हिंसा की शिकार हैं।
- वैवाहिक बलात्कार भी घरेलू हिंसा का ही एक रूप है। वैवाहिक बलात्कार से आशय पत्नी की सहमति के बगैर उसे यौन संबंध बनाने के लिये विवश करने से है। ऐसे कृत्य अन्यायपूर्ण होते हैं परंतु फिर भी महिलाओं को नीचा दिखाने और अपमानित करने के ऐसे मामले असामान्य नहीं हैं।
- वर्तमान में विश्व के लगभग 100 से अधिक देशों में वैवाहिक बलात्कार को अपराध घोषित किया गया है, परंतु दुर्भाग्य से भारत विश्व के उन 36 देशों में से एक है जहाँ वैवाहिक बलात्कार को आज भी अपराध की श्रेणी में नहीं रखा गया है।
- हालाँकि महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिये आपराधिक कानूनों में कई बड़े संशोधन किये गए हैं परंतु वैवाहिक बलात्कार का अपराध की श्रेणी में न होना महिलाओं की गरिमा और उनके मानवाधिकारों का अवमूल्यन करता है।

भारत में वैवाहिक बलात्कार की स्थिति:

- भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 375 के तहत निर्धारित बलात्कार की परिभाषा में एक महिला के साथ गैर-सहमति संभोग से जुड़े सभी प्रकार के यौन हमलों को शामिल किया गया है।
- भारत में वैवाहिक बलात्कार का गैर-अपराधीकरण IPC की धारा 375 के अपवाद (Exception) 2 से संबंधित है।

- IPC की धारा 375 के अपवाद 2 के तहत पंद्रह वर्ष से अधिक की आयु के पति और पत्नी के बीच अनैच्छिक यौन संबंधों को धारा 375 के तहत निर्धारित "बलात्कार" की परिभाषा से बाहर रखा गया है तथा इस प्रकार यह ऐसे कृत्यों के अभियोजन को रोक देता है।
- भारत में वैवाहिक बलात्कार की अवधारणा को "निहित सहमति" के प्रतिमान के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ एक पुरुष और एक महिला के बीच विवाह का अर्थ है कि दोनों ने संभोग के लिये सहमति दी है और इसका कोई दूसरा अर्थ नहीं है।

वैवाहिक बलात्कार: कानूनी और संवैधानिक अधिकारों के विरूद्ध:

- **पति-आश्रय (कोवर्चर) का सिद्धांत:** भारत में वैवाहिक बलात्कार के गैर-अपराधीकरण की प्रकृति ब्रिटिश काल से निर्गत होती है। वैवाहिक बलात्कार काफी हद तक 'पति (की पहचान) के साथ महिला की पहचान के विलय होने' के सिद्धांत से प्रभावित और व्युत्पन्न है।
  - वर्ष 1860 के दशक में जब IPC का मसौदा तैयार किया गया था, उस समय तक एक विवाहित महिला को स्वतंत्र कानूनी इकाई नहीं माना जाता था।
  - IPC के तहत बलात्कार की परिभाषा के वैवाहिक अपवाद को विक्टोरियन युग के पितृसत्तात्मक मानदंडों के आधार पर तैयार किया गया था जो पुरुषों व महिलाओं को बराबरी के रूप में मान्यता नहीं देता था और न ही विवाहित महिलाओं को संपत्ति के स्वामित्त्व की अनुमति देता था तथा इसमें पति-आश्रय (कोवर्चर) के सिद्धांत के तहत पति एवं पत्नी की पहचान का विलय कर दिया गया था।
- **अनुच्छेद 14 का उल्लंघन:** वैवाहिक बलात्कार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत प्राप्त समानता के अधिकार का उल्लंघन करता है।
  - धारा-375 के तहत शामिल अपवाद महिलाओं के दो वर्गों (उनकी वैवाहिक स्थिति के आधार) का निर्माण करता है और पुरुषों को अपनी पत्नियों के खिलाफ किये गए कृत्यों से प्रतिरक्षा प्रदान करता है।
  - ऐसे में यह अपवाद एक ही समय में अविवाहित महिलाओं की समान अपराधों के लिये रक्षा करते हुए विवाहित महिलाओं के मामले में उनकी वैवाहिक स्थिति के अलावा बगैर अन्य किसी कारण के अत्याचार का शिकार होने की संभवनाओं को बढ़ाता है।
- **IPC की धारा 375 की मूल भावना के विपरीत:** IPC की धारा 375 का उद्देश्य महिलाओं की रक्षा करना और बलात्कार जैसी अमानवीय गतिविधि में लिप्त व्यक्तियों को दंडित करना है।
  - हालाँकि पति को सज़ा से छूट देना पूरी तरह से इस उद्देश्य के विपरीत है, क्योंकि बलात्कार के परिणाम समान ही होते हैं चाहे फिर महिला विवाहित हो या अविवाहित।
  - इसके अलावा वास्तव में विवाहित महिलाओं के लिये घर पर अपमानजनक परिस्थितियों से बचना अधिक कठिन हो सकता है क्योंकि वे कानूनी और आर्थिक रूप से पति से जुड़ी/बँधी होती हैं।
- **अनुच्छेद-21 का उल्लंघन:** सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार, संविधान के अनुच्छेद-21 में निहित अधिकारों में स्वास्थ्य, गोपनीयता, गरिमा, सुरक्षित रहने की स्थिति और सुरक्षित वातावरण आदि अधिकार शामिल हैं।
  - कर्नाटक राज्य बनाम कृष्णप्पा मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यौन हिंसा एक अमानवीय कृत्य के अलावा महिला के निजता और पवित्रता के अधिकार का गैर-कानूनी उल्लंघन/घुसपैठ है।
    - उसी फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि गैर-सहमति से किया गया संभोग शारीरिक और यौन हिंसा के समान है।
  - सुचिता श्रीवास्तव बनाम चंडीगढ़ प्रशासन मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यौन गतिविधि से जुड़े विकल्प को संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजता, गरिमा और शारीरिक अखंडता के अधिकारों के समान बताया।
  - न्यायमूर्ति के.एस. पुट्टुस्वामी (सेवानिवृत्त) बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निजता के अधिकार को सभी नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हिस्सा बताया।
- इन सभी निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त एक मौलिक अधिकार के रूप में सभी महिलाओं (भले ही उनकी वैवाहिक स्थिति कोई भी हो) के यौन गतिविधि से दूर रहने के अधिकार को रेखांकित किया है।
- अत: बलपूर्वक किया गया यौन सहवास संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत प्राप्त मौलिक अधिकार का उल्लंघन है।

आगे की राह:

- महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के उन्मूलन पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा के तहत महिलाओं के खिलाफ हिंसा की दी गई परिभाषा के अनुसार, "लैंगिक-आधारित हिंसा का कोई भी कार्य (सार्वजनिक या निजी जीवन में), जिसके परिणामस्वरूप (या संभवत:) शारीरिक, यौन या मानसिक क्षति या पीड़ा पहुँचती हो, जिसमें ऐसे कृत्यों की धमकी, दबाव या स्वतंत्रता से वंचित करने का प्रयास आदि शामिल है।
- वर्ष 2013 में 'महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के उन्मूलन पर संयुक्त राष्ट्र समिति' (UN Committee on Elimination of Discrimination Against Women- CEDAW) ने भारत सरकार को वैवाहिक दुष्कर्म को अपराध की श्रेणी में लाने का सुझाव दिया था।
- 16 दिसंबर, 2012 के निर्भया बलात्कार मामले के कारण देशव्यापी विरोध प्रदर्शन के बाद गठित जेएस वर्मा समिति ने भी सरकार को यही सुझाव दिया था।
- इस कानून को हटाने से महिलाएँ अपने अत्याचारी पति से सुरक्षित रहेंगी और वैवाहिक बलात्कार से उबरने के लिये आवश्यक सहायता प्राप्त कर सकेंगी। साथ ही वे स्वयं को घरेलू हिंसा और यौन शोषण से बचा सकेंगी।

निष्कर्ष: भारतीय कानून अब पति और पत्नियों को अलग तथा स्वतंत्र कानूनी पहचान देता है, साथ ही आधुनिक युग में अधिकांश न्यायिक सिद्धांत स्पष्ट रूप से महिलाओं की सुरक्षा से संबंधित हैं। ऐसे में यह सही समय है कि विधायिका को इस कानूनी कमज़ोरी का संज्ञान लेना चाहिये और IPC की धारा 375 (अपवाद 2) को समाप्त करते हुए वैवाहिक बलात्कार को कानून के दायरे में लाना चाहिये।

दृष्टि The Vision

नोट :